पर्यावरण कक्ष, गाधी शाति प्रतिष्ठान
नई दिल्ली

आलेख और चित्र   अनुपम मिश्र
शोध और सयोजन   शीना और मजुश्री मिश्र
सज्जा और रेखाकन   दिलीप चिचालकर
आवरण चित्र   टोडा रायसिह की बावड़ी, टौंक

मई १९९५

मूल्य   दो सौ रुपए
प्रकाशक   गाधी शाति प्रतिष्ठान २२१ दीनदयाल उपाध्याय मार्ग नई दिल्ली ११०००२
टाइपसेट   अक्षरश्री ४/१ बाजार गली विश्वास नगर दिल्ली ११००३२
मुद्रक   सहारा इडिया मास कम्युनिकेशन सी ३ सैक्टर ११, नोएडा

इस विषय पर अनुपम मिश्र को सन् १९९२ ९३ मे
के के बिड़ला फाउडेशन की ओर से शोधवृत्ति मिली थी
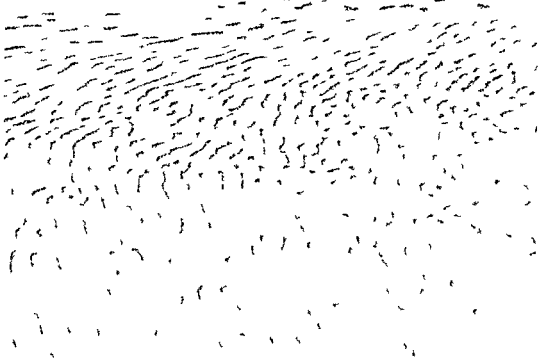
कहते है
मरुभूमि के समाज को
श्रीकृष्ण ने वरदान दिया
कि यहाँ कभी जल का अकाल
नही रहेगा ।
प्रसग महाभारत युद्ध
समाप्त होने का है ।
लेकिन मरुभूमि का समाज
इस वरदान को पाकर हाथ पर हाथ
रखकर नही बैठ गया । उसने अपने को
पानी के मामले मे तरह-तरह से
सगठित किया । गाव-गाव, शहर-शहर
वर्षा की बूदो को सहेज कर रखने के
तरीके खोजे और जगह-जगह इनको
बनाने का एक बहुत ही व्यावहारिक,
व्यवस्थित और विशाल सगठन खडा
किया । इतना विशाल कि पूरा समाज
उसमे एक जी हो गया । इसका आकार
इतना बड़ा कि वह सचमुच निराकार
हो गया ।
मरुभूमि के समाज ने भगवान के वरदान को
एक आदेश की तरह शिरोधार्य
कर लिया ।

सेवण और
का समुद्र

पधारो म्हारे देस

कभी यहा समुद्र था। लहरो पर लहरे उठती रही थी। काल की लहरो ने उस अथाह समुद्र को न जाने क्यो और कैसे सुखाया होगा। अब यहा रेत का समुद्र है। लहरो पर लहरे अभी भी उठती है।

प्रकृति के एक विराट रूप को दूसरे विराट रूप मे—समुद्र से मरुभूमि मे बदलने मे लाखो बरस लगे होगे। नए रूप को आकार लिए भी आज हजारो बरस हो चुके है। लेकिन राजस्थान का समाज यहा के पहले रूप को भूला नही है। वह अपने मन की गहराई मे आज भी उसे हाकड़ो नाम से याद रखे है। कोई हजार बरस पुरानी डिंगल भाषा मे और आज की राजस्थानी मे भी हाकड़ो शब्द उन पीढ़ियो की लहरो मे तैरता रहा है, जिनके पुरखो ने भी कभी समुद्र नही देखा था।

आज के मारवाड़ के पश्चिम मे लाखो बरस पहले रहे हाकड़ो के अलावा
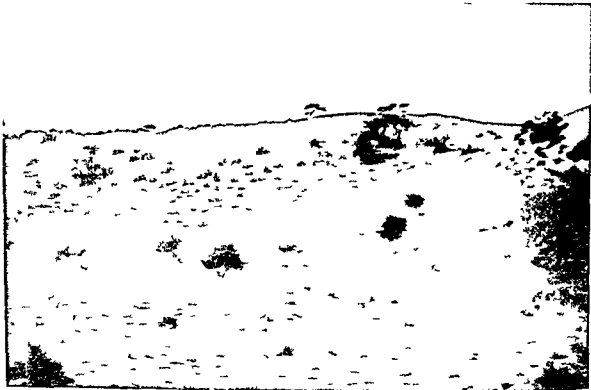
राजस्थान के मन मे समुद्र के और भी कई नाम है । सस्कृत से विरासत मे मिले सिधु, सरितापति, सागर, वाराधिप तो है ही, आच, उअह, देधाण, वडनीर, वारहर, सफरा भडार जैसे सबोधन भी है । एक नाम हेल भी है और इसका अर्थ समुद्र के साथ साथ विशालता और उदारता भी है ।

यह राजस्थान के मन की उदारता ही है कि विशाल मरुभूमि मे रहते हुए भी उसके कठ मे समुद्र के इतने नाम मिलते है । इसकी दृष्टि भी बड़ी विचित्र रही होगी । सृष्टि की जिस घटना को घटे हुए ही लाखो बरस हो चुके, जिसे घटने मे भी हजारो बरस लगे, उस सबका जमा घटा करने कोई बैठे तो आकड़ो के अनत विस्तार के अधेरे मे खो जाने के सिवा और क्या हाथ लगेगा । खगोलशास्त्री लाखो, करोड़ो मील की दूरियो को 'प्रकाश वर्ष' से नापते है । लेकिन राजस्थान के मन ने तो युगो के भारी भरकम गुना भाग को पलक झपक कर निपटा दिया — इस बड़ी घटना को वह 'पलक दरियाव' की तरह याद रखे है — पलक झपकते ही दरिया का सूख जाना भी इसमे शामिल है और भविष्य मे इस सूखे स्थल का क्षण भर मे फिर से दरिया बन जाना भी ।

समय की अतहीन धारा को क्षण क्षण मे देखने और विराट, विस्तार को अणु मे परखने वाली इस पलक ने, दृष्टि ने हाकड़ो को खो दिया । पर उसके जल को, कण-कण को, वूदो मे देख लिया । इस समाज ने अपने को कुछ इस रीति से ढाल लिया कि अखड समुद्र खड-खड होकर ठाव ठाव यानी जगह-जगह फैल गया ।

चौथी हिदी की पाठ्य पुस्तको से लेकर देश के योजना आयोग तक राजस्थान की, विशेषकर मरुभूमि की छवि एक सूखे, उजड़े और पिछड़े क्षेत्र की है । थार रेगिस्तान का वर्णन तो कुछ ऐसा मिलेगा कि कलेजा सूख जाए । देश के सभी राज्यो मे क्षेत्रफल के आधार पर मध्यप्रदेश के बाद दूसरा सवसे वड़ा राज्य राजस्थान आबादी की गिनती मे नोवा है, लेकिन भूगोल की सब किताबो मे वर्षा के मामले मे सवसे अतिम है।

वर्षा को पुराने इच मे नापे या नए सेटीमीटर मे, वह यहा सवसे कम ही गिरती है । यहा पूरे बरस भर मे वर्षा ६० सेटीमीटर का औसत लिए है । देश की औसत वर्षा ११० सेटीमीटर आकी गई हे । उस हिसाब से भी राजस्थान का औसत आधा ही बैठता है । लेकिन औसत वताने वाले आकड़े भी यहा का कोई ठीक चित्र नही दे सकते । राज्य मे एक छोर से दूसरे छोर तक कभी भी एक सी वर्षा नही होती । कही यह १०० सेटीमीटर से अधिक है तो कही २५ सेटीमीटर से भी कम ।

भूगोल की किताबे वर्षा को कजूस महाजन' की तरह देखती है

भूगोल की कितावे प्रकृति को, वर्षा को यहा 'अत्यन्त कजूस' महाजन की तरह देखती है और राज्य के पश्चिमी क्षेत्र को इस महाजन का सबसे दयनीय शिकार वताती है । इस क्षेत्र मे जैसलमेर, बीकानेर, चुरू, जोधपुर और श्रीगगानगर आते है । लेकिन यहा कजूसी मे भी कजूसी मिलेगी । वर्षा का 'वितरण' बहुत असमान है । पूर्वी हिस्से से पश्चिमी हिस्से की तरफ आते-आते वर्षा कम से कम होती जाती है । पश्चिम तक जाते-जाते वर्षा सूरज की तरह 'डूबने' लगती है । यहा पहुच कर वर्षा सिर्फ १६ सेटीमीटर रह जाती है । इस मात्रा की तुलना कीजिए दिल्ली से, जहा १५० सेटीमीटर से ज्यादा पानी गिरता है, तुलना कीजिए उस गोवा से, कोकण से, चेरापूजी से, जहा यह आकड़ा ५०० से १००० सेटीमीटर तक जाता है ।
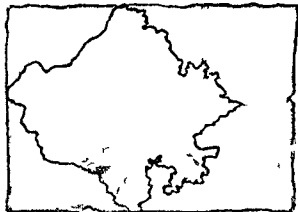
मरुभूमि मे सूरज गावा, धरापूजी की वया की तरह वरगता है। पानी कम ओर गरमी ज्यादा — ये दो वाते जरा मिल जाए वरा जीवन दूभर हो जाता है, ऐसा माना जाता है। दुनिया के वाकी मरुस्थलो मे भी पानी लगभग इतना ही गिरता है, गरमी लगभग इतनी ही पड़ती है। इसलिए उरा वसावट वहुत कम ही रही है। लेकिन राजस्थान के मरुप्रदेश मे दुनिया के अन्य उग प्रदेशो की तुलना मे न सिर्फ वसावट ज्यादा है, उग वसावट म जीवन की गुगध भी है। यह इलाका दूसरे देशो के मरुस्थलो की तुलना म सबरा जीवत माना गया है।

इसका रहस्य यहा के समाज म है। राजस्थान क समाज न प्रकृति रा मिलन वाले इतने कम पानी का रोना नहीं रोया। उसन इसे एक चुनौती की तरह लिया ओर अपने को ऊपर रा नीचे तक कुछ इस ढग रा खड़ा किया कि पानी का स्वभाव समाज के स्वभाव म वहुत सरल, तरल ढग से वहने लगा।

इस 'सवाई' स्वभाव से परिचित हुए बिना यह कभी समझ मे नहीं आएगा कि यहा पिछले एक हजार साल के दौर मे जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर और फिर जयपुर जैसे वड़े शहर भी वहुत सलीके के साथ कैसे वस सके थ। इन शहरो की आवादी भी कोई कम नहीं थी। इतने कम पानी के इलाके मे होने के वाद भी इन शहरो का जीवन देश के अन्य शहरो के मुकावले कोई कम सुविधाजनक नही था। इनमे से हरेक शहर अलग-अलग दौर मे लवे समय तक सत्ता, व्यापार और कला का प्रमुख केद्र भी वना रहा था। जव ववई, कलकत्ता, मद्रास जैसे आज के वड़े शहरो की 'छठी' भी नहीं हुई थी तव जैसलमेर आज के ईरान, अफगानिस्तान से लेकर रूस तक के कई भागो से होने वाले व्यापार का एक वड़ा केन्द्र वन चुका था।

जीवन की, कला की, व्यापार की, सस्कृति की ऊचाइया को राजस्थान के समाज ने अपने जीवन-दर्शन की एक विशिष्ट गहराई के कारण ही छुआ था। इस जीवन-दर्शन मे पानी का काम एक वड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता था। सचमुच धेले भर के विकास के इस नए दौर ने पानी की इस भव्य परपरा का कुछ क्षय जरूर किया है, पर वह उसे आज भी पूरी तरह तोड़ नही सका है। यह सौभाग्य ही माना जाना चाहिए।

पानी के काम मे यहा भाग्य भी है और कर्तव्य भी। वह भाग्य ही तो था कि महाभारत युद्ध समाप्त हो जाने के बाद श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र से अर्जुन को साथ लेकर वापस द्वारिका इसी रास्ते से लौटे थे। उनका रथ मरुदेश पार कर रहा था।

आज के जैसलमेर के पास त्रिकूट पर्वत पर उन्हे उत्तुग ऋषि तपस्या करते हुए मिले थे। श्रीकृष्ण ने उन्हे प्रणाम किया था और उनके तप से प्रसन्न होकर उन्हे वर मागने कहा था। उत्तुग का अर्थ है ऊचा। ऋषि सचमुच बहुत ऊचे थे। उन्होने अपने लिए कुछ नही मागा। प्रभु से प्रार्थना की कि "यदि मेरे कुछ पुण्य है तो भगवन वर दे कि इस क्षेत्र मे कभी जल का अकाल न रहे।"

"तथास्तु", भगवान ने वरदान दिया था।

लेकिन मरुभूमि का भागवान समाज इस वरदान को पाकर हाथ पर हाथ रख कर नही बैठा। उसने अपने को पानी के मामले मे तरह-तरह से कसा। गाव गाव, ठाव ठाव वर्षा को वर्ष भर सहेज कर रखने की रीति बनाई।

रीति के लिए यहा एक पुराना शब्द वोज है। वोज यानी रचना, युक्ति और उपाय तो है ही, सामर्थ्य, विवेक और विनम्रता के लिए भी इस शब्द का उपयोग होता रहा है। वर्षा की बूदो को सहेज लेने का वोज विवेक के साथ रहा है और विनम्रता लिए हुए भी। यहा के समाज ने वर्षा को इच या सेंटीमीटर मे नही, अगुलो या बित्तो मे भी नही, बूदो मे मापा होगा। उसने इन बूदो को करोड़ो रजत बूदो की तरह देखा और बहुत ही सजग ढग से, वोज से इस तरल रजत की बूदो को सजोकर, पानी की अपनी जरूरत को पूरा करने की एक ऐसी भव्य परपरा बना ली, जिसकी धवलधारा इतिहास से निकल कर वर्तमान तक बहती है और वर्तमान को भी इतिहास बनाने का वोज यानी सामर्थ्य रखती है।

१
[illegible]
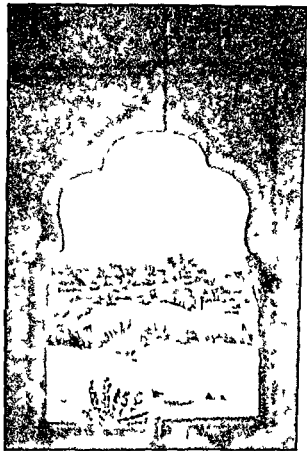
राजस्थान के पुराने इतिहास मे मरुभूमि का या अन्य क्षेत्रो का भी वर्णन सूखे, उजड़े और एक अभिशप्त क्षेत्र की तरह नहीं मिलता । रेगिस्तान के लिए आज प्रचलित थार शब्द भी ज्यादा नहीं दिखता । अकाल पड़े हैं, कहीं-कहीं पानी का कष्ट भी रहा है पर गृहस्थो से लेकर जोगियो ने, कविया से लेकर मागणियारा ने, लगाओ ने, हिंदू-मुसलमानो ने इसे 'धरती धोरा री' कहा है । रेगिस्तान के पुराने नामो मे स्थल है, जो शायद हाकड़ो, समुद्र के सूख जाने से निकले स्थल का सूचक रहा हो । फिर स्थल का थल और महाथल बना और बोलचाल मे थली और धरधूधल भी हुआ । थली तो एक बड़ी मोटी पहचान की तरह रहा है । बारीक पहचान मे उसके अलग-अलग क्षेत्र अलग-अलग विशिष्ट नाम लिए थे । माड़, मारवाड़, मेवाड़, मेरवाड़, ढूढार, गोडवाड़, हाड़ौती जैसे बड़े विभाजन तो दसरेक और धन्वदेश जैसे छोटे विभाजन भी थे । और इस विराट मरुस्थल के छोटे-बड़े राजा चाहे जितने रहे हो — नायक तो एक ही रहा है – श्रीकृष्ण । यहा उन्हे बहुत स्नेह के साथ मरुनायकजी की तरह पुकारा जाता है ।

मरुनायकजी का वरदान और फिर समाज के नायको के बोज, सामर्थ्य का एक अनोखा सजोग हुआ । इस सजोग से बोजतो-ओजतो यानी हरेक द्वारा अपनाई जा सकने वाली सरल, सुदर रीति को जनम मिला । कभी नीचे धरती पर क्षितिज तक पसरा हाकड़ो ऊपर आकाश मे बादलो के रूप मे उड़ने लगा था । ये बादल कम ही होगे । पर समाज ने इनमे समाए जल को इच या सेटीमीटर मे न देख अनगिनत बूदो की तरह देख लिया और इन्हे मरुभूमि मे, राजस्थान भर मे ठीक बूदो की तरह ही छिटके टाको, कुड-कुडियो, बेरियो, जोहड़ो, नाडियो, तालाबो, बावड़ियो और कुए, कुइयो और पार मे भर कर उड़ने वाले समुद्र को, अखड हाकड़ो को खड-खड नीचे उतार लिया ।

जसढोल, यानी प्रशसा करना । राजस्थान ने वर्षा के जल का सग्रह करने की अपनी अनोखी परपरा का, उसके जस का कभी ढोल नही बजाया । आज देश के लगभग सभी छोटे-बड़े शहर, अनेक गाव, प्रदेश की राजधानिया और तो और देश की राजधानी तक खूब अच्छी वर्षा के बाद भी पानी जुटाने के मामले मे बिलकुल कगाल हो रही है । इससे पहले कि देश पानी के मामले मे बिलकुल 'ऊचा' सुनने लगे, सूखा माने गए इस हिस्से राजस्थान मे, मरुभूमि मे फली-फूली जल सग्रह की भव्य परपरा का जसढोल बजना ही चाहिए ।

पधारो म्हारे देस ।

माटी, जल और ताप की तपस्या

मरुभूमि मे बादल की हल्की-सी रेखा दिखी नही कि बच्चो की टोली एक चादर लेकर निकल पड़ती है। आठ छोटे-छोटे हाथ बड़ी चादर के चार कोने पकड़ उसे फैला लेते हैं। टोली घर-घर जाती है और गाती है

> डेडरियो करे डरू, डरू,
> पालर पानी भरू भरू
> आधी रात री तलाई नेष्टेई नेष्टे

हर घर से चादर मे मुट्ठी भर गेहू डाला जाता है। कहीं-कही बाजरे का आटा भी। मोहल्ले की फेरी पूरी होते होते, चादर का वजन इतना हो जाता है कि आठ हाथ कम पड़ जाते है। चादर समेट ली जाती है। फिर यह टोली कही जमती है, अनाज उबाल कर उसकी गूगरी बनती है। कण-कण संग्रह बच्चो की टोली को तृप्त कर जाता है।

पालर पानी भरू भरू

अब बड़ों की बारी है, बूंद-बूंद पानी जमा कर वर्ष भर तृप्त होने की। लेकिन राजस्थान मे जल संग्रह की परपरा समझने से पहले इस क्षेत्र से थोड़ा सा परिचित हो जाना चाहिए।

राजस्थान की कुडली कम से कम जल के मामले मे 'मगली' रही है। इसे अपने कौशल से मगलमय बना लेना कोई सरल काम नही था। काम की कठिनता के अलावा क्षेत्र का विस्तार भी कोई कम नही था। आज का राजस्थान क्षेत्रफल के हिसाब से देश का दूसरा बड़ा राज्य है। देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग ११ प्रतिशत भाग या कोई ३,४२,२१५ वर्ग किलोमीटर इसके विस्तार मे आता है। इस हिसाब से दुनिया के कई देशो से भी बड़ा है हमारा यह प्रदेश। इग्लैड से तो लगभग दुगना ही समझिए।

पहले छोटी बड़ी इक्कीस रियासते थी, अब इकतीस जिले हैं। इनमे से तेरह जिले अरावली पर्वतमाला के पश्चिम मे और अन्य पूर्व मे हैं। पश्चिमी भाग के तेरह जिलो के नाम इस प्रकार हैं जेसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर जोधपुर, जालौर, पाली, नागौर, चुरू, श्रीगगानगर, सीकर, हनुमानगढ़, सिरोही तथा झुझुनू। पूर्व और दक्षिण मे बासवाड़ा,

डूगरपुर, उदयपुर, काकरोली, चित्तौड़गढ़, भीलवाडा, झालावाड़, कोटा, बारा, बूदी, टोक, सवाई माधोपुर, धौलपुर, दौसा, जयपुर, अजमेर, भरतपुर तथा अलवर जिले आते है। जैसलमेर राज्य का सबसे बड़ा जिला है। यह लगभग ३८,४०० वर्ग किलोमीटर मे फैला है। सबसे छोटा जिला हे धौलपुर जो जैसलमेर के दसवे भाग बराबर है।

आज के भूगोल वाले इस सारे हिस्से को चार भागो मे बाटते हे। मरुभूमि को पश्चिमी वालू का मैदान कहा जाता है या शुष्क क्षेत्र भी कहा जाता है। उससे लगी पट्टी अर्धशुष्क क्षेत्र कहलाती है। इसका पुराना नाम बागड था। फिर अरावली पर्वतमाला है और मध्यप्रदेश आदि से जुड़ा राज्य का भाग दक्षिणी-पूर्वी पठार कहलाता है। इन चार भागो मे सबसे बड़ा भाग पश्चिमी वालू का मैदान यानी मरुभूमि का क्षेत्र ही है। इसका एक पूर्वी कोना उदयपुर के पास है, उत्तरी कोना पजाव छूता है और दक्षिणी कोना गुजरात। पश्चिम मे पूरा का पूरा भाग पाकिस्तान के साथ जुड़ा है।

ताप की तपस्या

मरुभूमि भी सारी मरुमय नही है। पर जो है, वह भी कोई कम नही। इसमे जेसलमेर बाड़मेर, बीकानेर, नागौर, चुरू और श्रीगगानगर जिले समा जाते है। इन्ही हिस्सो मे रेत के बड़े-बड़े टीले है, जिन्हे धोरे कहा जाता है। गर्मी के दिनो मे चलने वाली तेज आधियो मे ये धोरे 'पख' लगा कर इधर से उधर उड़ चलते है। तव कई बार रेल की पटरिया, छोटी बड़ी सड़के और राष्ट्रीय मार्ग भी इनके नीचे दब जाते है। इसी भाग मे वर्षा सवसे कम होती है। भूजल भी खूब गहराई पर है। प्राय सौ से तीन सो मीटर और वह भी ज्यादातर खारा है।
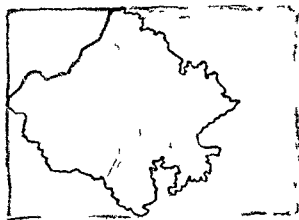
अर्धशुष्क कहलाने वाला भाग विशाल मरुभूमि और अरावली पर्वतमाला के बीच उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम तक लबा फैला हे। यही से वर्षा का आकड़ा थोड़ा ऊपर चढ़ता है। तव भी यह २५ सेटीमीटर से ५० सेटीमीटर के वीच झूलता है और देश की औसत वर्षा से आधा ही वैठता है। इस भाग मे कही-कही दोमट मिट्टी है तो वाकी मे वही चिर परिचित रेत। 'मरु विस्तार' को रोकने की तमाम राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय योजनाओ को धता वता कर आधिया इस रेत को अरावली के दर्रो से पूर्वी भाग मे भी ला पटकती है। ये छोटे-छोटे दर्रे व्यावर, अजमेर आर सीकर के पास हैं।

इस क्षेत्र मे व्यावर, अजमेर, सीकर, झुझुनू जिले ह ओर एक तरफ नागार, जाधपुर पाली, जालौर ओर चुरू का कुछ भाग आता हे। भूजल यहा भी सो से तीन सा मीटर

की गहराई लिए है ओर प्राय खारा ही मिलता है ।

यहा के कुछ भागो मे एक और विचित्र स्थिति है पानी तो खारा है ही, जमीन भी 'खारी' है । ऐसे खारे हिस्सो के निचले इलाको मे खारे पानी की झीले हैं । साभर, डेगाना, डीडवाना, पचपदरा, लूणकरणसर, वाप, पोकरन और कुचामन की झीलो मे तो वाकायदा नमक की खेती होती है । झीलो के पास मीलो दूर तक जमीन मे नमक उठ आया है ।

इसी के साथ है पूरे प्रदेश को एक तिरछी रेखा से नापती विश्व की प्राचीनतम पर्वतमालाओ मे से एक माला अरावली पर्वत की । ऊचाई भले ही कम हो पर उमर मे यह हिमालय से पुरानी है । इसकी गोद मे है सिरोही, डूगरपुर, उदयपुर, आवू, अजमेर और अलवर । उत्तर-पूर्व मे यह दिल्ली को छूती है और दक्षिण पश्चिम मे गुजरात को। कुल लवाई सात सौ किलोमीटर है और इसमे से लगभग साढ़े पाच सौ किलोमीटर राजस्थान को काटती है । वर्षा के मामले मे राज्य का यह सम्पन्नतम इलाका माना जाता है ।

माटी और आकाश का बदलता स्वभाव

अरावली से उतर कर उत्तर मे उत्तर पूर्व से दक्षिण पूर्व तक फैला एक और भाग है । इसमे उदयपुर, डूगरपुर के कुछ भाग के साथ-साथ वासवाड़ा, भीलवाड़ा, वूदी, टौंक, चित्तौड़गढ़, जयपुर और भरतपुर जिले है । मरुनायकजी यानी श्रीकृष्ण के जन्म स्थान व्रज से सटा है भरतपुर । दक्षिणी-पूर्वी पठार भी इसमे फसा दिखता है । इसमे कोटा, बूदी, सवाई माधोपुर और धोलपुर है । धौलपुर से मध्यप्रदेश के वीहड़ शुरू हो जाते है ।

यहा जिस तरह नीचे माटी का स्वभाव बदलता है, इसी तरह ऊपर आकाश का भी स्वभाव बदलता जाता है ।

हमारे देश मे वर्षा मानसूनी हवा पर सवार होकर आती है । मई-जून मे पूरा देश तपता है । इस वढ़ते तापमान के कारण हवा का दवाव लगातार कम होता जाता है । उधर समुद्र मे अधिक भार वाली हवा अपने साथ समुद्र की नमी बटोर कर कम दवाव वाले भागो की तरफ उड़ चलती है । इसी हवा को मानसून कहते है ।

राजस्थान के आकाश मे मानसून की हवा दो तरफ से आती है । एक पास से, यानी अरव सागर से और दूसरी दूर वगाल की खाड़ी से । दो तरफ से आए बादल भी यहा के कुछ हिस्सो मे उतना पानी नही बरसा पाते, जितना वे रास्ते मे हर कही बरसाते आते है ।

रेत और

दूर बगाल की खाड़ी से उठने वाली मानसून की हवा गगा का विशाल मैदान पार करते-करते अपनी सारी आर्द्रता खो बैठती है। राजस्थान तक आते-आते उसकी झोली मे कुछ इतना बचता ही नही है कि वह राजस्थान को भी ठीक से पानी दे जा सके। अरब सागर से उठी मानसून की हवा जब यहा के तपते क्षेत्र मे आती है तो यहा की गरमी से उसकी आर्द्रता आधी रह जाती है। इसमे पूरे प्रदेश को तिरछा काटने वाली अरावली की भी भूमिका है।

अरावली दक्षिण पश्चिम से उत्तर-पूर्व मे फैली है। मानसून की हवा भी इसी दिशा मे बहती है। इसलिए मानसून की हवा अरावली पार कर पश्चिम के मरुप्रदेश मे प्रवेश करने के बदले अरावली के समानातर बहती हुई वर्षा करती चलती है। इस पर्वतमाला मे सिरोही और आबू मे खूब वर्षा होती है, कोई १५० सेटीमीटर। यह मात्रा राज्य की औसत वर्षा से तिगुनी है। यह भाग अरावली के ऊचे स्थानो मे है, इसलिए मानसूनी हवा यहा टकरा कर अपना बचा खजाना खाली कर जाती है। और मरुभूमि को अरावली के

१६

उस पार छोड़ कर चुक जाता है और का भूगोल भी।

लेकिन मरुभूमि के समाज की भाषा माटी, वर्षा और ताप की इस नई वैज्ञानिक परिभाषा से बिलकुल अलग है। इस समाज में माटी, वर्षा और ताप की तपस्या मिलती और इस तप में जीवन का तेज भी है और शीतलता भी। फागुन महीने में होली पर अबीर गुलाल के साथ ही यहां मरुनायकजी यानी श्रीकृष्ण पीली रेत उड़ाने लगते हैं। चैत माह आते आते धरती तपने लगती है। नए भूगोल वाले जिस सूरज की गरमी से यहां सबसे ज्यादा आतंकित दिखते हैं, उस सूरज का यहां एक नाम पीथ है और पीथ का एक अर्थ यहां जल भी है। सूरज ही तो धरती पर सारे जल चक्र का वर्षा का स्वामी है।

ऊभो भलो अषाढ़
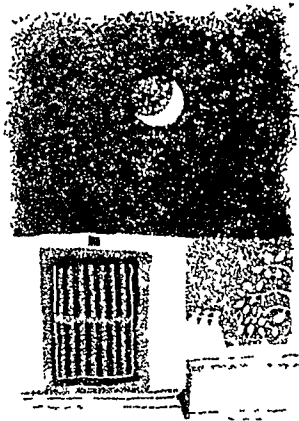
आषाढ़ के प्रारंभ में सूरज के चारों ओर दिखने वाला एक विशेष प्रभामंडल जलकुंडा कहलाता है। यह जलकुंडा वर्षा का सूचक माना जाता है। इन्हीं दिनों उदित होते सूर्य में माछला, यानी मछली के आकार की एक विशेष किरण दिख जाए तो तत्काल वर्षा की संभावना मानी जाती है। समाज को वर्षा की जानकारी देने में चंद्रमा भी पीछे नहीं रहता। आषाढ़ में चंद्रमा की कला हल की तरह खड़ी रहे और श्रावण में वह विश्राम की मुद्रा में लेटी दिखे तो वर्षा ठीक होती है: ऊभो भलो अषाढ़ सूतो भलो सरावण। जलकुंडा, माछला और चंद्रमा के रूपकों से भरा पड़ा है भडली पुराण। इस पुराण की रचना डंक नामक ज्योतिषाचार्य ने की थी। भडली उनकी पत्नी थीं, उन्हीं के नाम पर पुराण जाना जाता है। कहीं कहीं दोनों को एक साथ याद किया जाता है। ऐसी जगहों में इसे डंक भडली पुराण कहते हैं।

बादल यहां सबसे कम आते हैं, पर बादलों के नाम यहां सबसे ज्यादा निकलें तो कोई अचरज नहीं। खड़ी बोली और बोली में ब और व के अंतर से पुलिंग स्त्रीलिंग के अंतर से बादल का बादल और बादली, वादलो, वादली है। संस्कृत से बरसे जलहर, जीमूत, जलधर, जलवाह, जलधरण, जलद, घटा, क्षर (जल्दी नष्ट हो जाते हैं), सारंग, व्योम, व्योमचर, मेघ, मेघाडंबर, मेघमाला, मुदिर,

महीमडल जैसे नाम भी है। पर बोली मे तो वादल के नामो की जेसे घटा छा जाती है भरणनद, पाथोद, धरमडल, दादर, डवर, दलवादल, घन, घिणमड, जलजाल, कालीकाठल, कालाहण, कारायण, कद, हब्र, मैमट, मेहाजल, मेघाण, महाघण, रामइयो और सेहर। वादल कम पड़ जाए, इतने नाम हे यहा वादलो के। वड़ी सावधानी से वनाई इस सूची मे कोई भी ग्वाला चाहे जव दो चार नाम और जोड़ देता है।
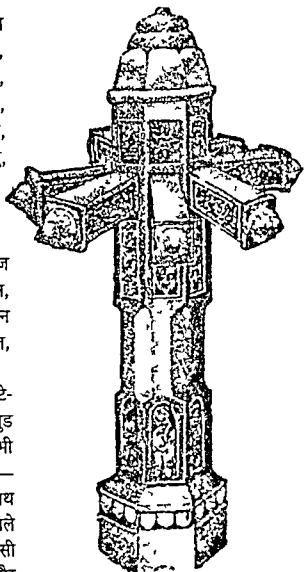
भापा की ओर उसके साथ साथ इस समाज की वर्षा विषयक अनुभव सम्पन्नता इन चालीस, चवालीस नामो मे समाप्त नही हो जाती। वह इन वादलो का उनके आकार, प्रकार, चाल-ढाल, स्वभाव के आधार पर भी वर्गीकरण करती है सिखर है वड़े वादलो का नाम तो छीतरी हे छोटे-छोटे लहरदार वादल। छितराए हुए वादलो के झुड मे कुछ अलग-थलग पड़ गया छोटा-सा वादल भी उपेक्षा का पात्र नही है। उसका भी एक नाम है — चूखो। दूर वर्षा के वे वादल जो ठडी हवा के साथ उड़ कर आए है, उन्हे कोलायण कहा गया है। काले वादलो की घटा के आगे-आगे श्वेत पताका सी उठाए सफेद वादल कोरण या कागोलड़ है। और इस श्वेत पताका के विना ही चली आई काली घटा काठल या कलायण है।

इतने सारे वादल हो आकाश मे तो चार दिशाए उनके लिए वहुत कम ही हागी। इसलिए दिशाए आठ भी हैं और सोलह भी। इन दिशाओ मे फिर कुछ स्तर भी हैं। और इस तरह ऊचाई पर, मध्य मे और नीचे उड़ने वाले वादलो को भी अलग-अलग नाम स पुकारा जाता है। पतले ओर ऊचे वादल कस या कसवाइ हैं। नैऋत कोण म ईशान काण की ओर थोड़े नीचे तेज वहने वाले वादल ऊंन है। घटा का दिन भर छाए रहना थाड़ा थाड़ा वरसना सहाइ कहलाता है। पश्चिम के तेज दौड़ने वाले वादलो की घटा लारा है और उनसे लगातार होने वाली वर्षा लोरापड़ है। लोरापड़ वर्षा का एक गीत भी है।

वर्षा कर चुके बादल यानी अपना कर्तव्य पूरा करने के बाद किसी पहाड़ी पर थोड़ा टिक कर आराम करने वाले बादल रीछी कहलाते है।

काम मे लगे रहने से आराम करने तक बादलो की ऐसी समझ रखने वाला समाज, उन्हे इतना प्यार करने वाला समाज उनकी बूदो को कितना मगलमय मानता रहा होगा ?

अभी तो सूरज ही बरस रहा है। जेठ के महीने मे कृष्णपक्ष की ग्यारस से नौतपा प्रारभ होते है। ये तिथिया बदलती नही, हा, केलैडर के हिसाब से ये तिथिया मई महीने मे कभी दूसरे तो कभी तीसरे हफ्ते मे आती है। नौतपा, नवतपा — यानी धरती के खूब तपने के नौ दिन। ये खूब न तपे तो अच्छी वर्षा नही होती। इसी ताप की तपस्या से वर्षा की शीतलता आती है।

ओम गोम, आकाश ओर धरती का, ब्रह्म ओर सृष्टि का यह शाश्वत सबध हे। तेज धूप का एक नाम घाम है, जो राजस्थान के अलावा बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश के कई इलाको मे चलता है। पर ओघमो शब्द राजस्थान मे ही है — वर्षा से पहले की तपन। इन्ही दिनो मरुभूमि मे बलती यानी लू ओर फिर रेतीली आधिया चलती हे। खबरे छपती है कि इनसे यहा का जीवन 'अस्त-व्यस्त' हो गया हे। रेल ओर सड़के बद हो गई है। पर अभी भी यहा लोग इन 'भयकर' आधियो को ओम गोम का एक हिस्सा मानते हैं।

मरुभूमि मे जेठ को कोई कोसता नही।
चरवाहे, ग्वाले जेठ के स्वागत मे गीत गाते है
और ठेठ कबीर की शैली मे साई को
जेठ भेजने के लिए धन्यवाद देते है -
जेठ महीनो भलो आयो

इसलिए मरुभूमि मे जेठ को कोई कोसता नही। उन दिनो पूरे ढके शरीर मे केवल चेहरा ही तो खुला रहता है। तेज बहती दखिनी हवा रेत उठा-उठा कर चेहरे पर मारती है। लेकिन चरवाहे, ग्वाले जेठ के स्वागत मे गीत गाते है और ठेठ कबीर की शैली मे साई को जेठ भेजने के लिए धन्यवाद देते है *जेठ महीनो भला आयो, दक्खन बाजे* वा (हवा), कानो रे तो काकड बाजे, बाड़े साई वाह।

ऐसे भी प्रसग है, जहा बारह महीने आपस मे मिल बैठ बाते कर रहे है और हरेक महीना अपने को प्रकृति का सबसे योग्य बेटा बता रहा है। पर इस सवाद मे बाजी मार ले जाता है जेठ का महीना। वही जेठू यानी सबसे बड़ा भाई सिद्ध होता है। जेठ ठीक तपे नही, रेत केअधड़ उठे नही तो 'जमानो अच्छा नही होगा। जमानो यानी वर्षा काल। वर्षा खेतीवाड़ी, और घास चारे के हिसाब से ठीक स्थिति का दौर। इसी दोर मे पीथ

यानी सूरज अपना अर्थ बदलकर जल बनता है।

आउगाल से प्रारभ होते है वर्षा आगमन के सकेत। मोहल्लो मे बच्चे निकलेगे चादर फैलाकर 'डेडरियो' खेलने और बड़े निकलेगे 'चादरे' साफ करने। जहा-जहा से वर्षा का पानी जमा करना है, वहा के आगन, छत और कुडी के आगौर की सफाई की जाएगी। जेठ के दिन बीत चले है। आषाढ़ लगने वाला है। पर वर्षा मे अभी देरी है। आषाढ़ शुक्ल की एकादशी से शुरू होगा वरसाली या चौमासा। यहा वर्षा कम होती हो, कम दिन गिरती हो, पर समाज ने तो उसकी आवभगत के लिए पूरे चार महीने रोक कर रखे है।

आषाढ़ लग गया है

समाज का जो मन कम आने वाले बादलो का इतने अधिक नामो से स्मरण करता हो, वह उनकी रजत बूदो को कितने रूपो मे देखता होगा, उन्हे कितने नामो से पुकारता होगा ? यहा भी नामो की झड़ी लगी मिलेगी।

बूद का पहला नाम तो हरि ही है। फिर मेघपुहुप है। वृष्टि और उससे बोली मे

आया बिरखा और व्रखा है। घन का, बादल का सार, घणसार है। एक नाम मेवलियो भी है। बूदो की तो नाममाला ही है। बूला और सीकर जलकण के अर्थ मे है। फुहार तथा छीटा शब्द सब जगह प्रचलित है। उसी से छाटो, छाटा-छड़को, छछोहो बने है। फिर नभ से टपकने के कारण टपका है, टपको और टीपो है। झरमर है, बूदा-बादी। यही अर्थ लिए पुणग और जीखा शब्द है। बूदा-बादी से आगे बढ़ने वाली वर्षा की झड़ी रीठ और भोट है। यह झड़ी लगातार झड़ने लगे तो झड़मडण है।

यह छोल यह आनद सन्नाटे का नहीं है

चार मास वर्षा के और उनमे अलग-अलग महीने मे होने वाली वर्षा के नाम भी

अलग-अलग। हलूर है तो झड़ी ही, पर सावन भादो की। रोहाड़ ठड मे होने वाली छुटपुट वर्षा है। वरखावल भी झड़ी के अर्थ मे वर्षावलि से सुधरकर बोली मे आया शब्द है। मेहाझड़ मे बूदो की गति भी बढ़ती है और अवधि भी। झपटो मे केवल गति बढ़ती है और अवधि कम हो जाती है — एक झपट्टे मे सारा पानी गिर जाता है।

त्राट, त्रमझड़, त्राटकणो और धरहरणो शब्द मूसलाधार वर्षा के लिए है। छोल शब्द भी इसी तरह की वर्षा के साथ-साथ आनद का अर्थ भी समेटता है। यह छोल, यह आनद सन्नाटे का नही है। ऐसी तेज वर्षा के साथ बहने वाली आवाज सोक या सोकड़ कहलाती

है। वर्षा कभी-कभी इतनी तेज और सोकड़ इतनी चचल हो जाती है कि बादल और धरती की लवी दूरी क्षण भर मे नप जाती है। तव वादल से धरती तक को स्पर्श करने वाली धारावली यहा धारोलो के नाम से जानी जाती है।

न तो वर्षा का खेल यहा आकर रुकता है, न शब्दो का ही। धारोलो की बौछार वाहर से घर के भीतर आने लगे तो वाछड़ कहलाती है और इस बाछड़ की नमी से नम्र, नरम हुए ओर भीगे कपड़ो का विशेषण वाछड़वायो वन जाता है। धारोलो के साथ उठने वाली आवाज घमक कहलाती है। यह वजनी है, पुलिग भी। घमक को लेकर वहने वाली प्रचड वायु वावल है।

धीरे-धीरे वावल मद पड़ती है, घमक शात होता है, कुछ ही देर पहले धरती को स्पर्श कर रहा धारोलो वापस वादल तक लोटने लगता है। वर्षा थम जाती है। बादल अभी छटे नही है। अस्त हो रहा सूर्य उनमे से झाक रहा है। झाकते सूर्य की लवी किरण मोघ कहलाती है ओर यह भी वर्षासूचक मानी जाती है। मोघ दर्शन के बाद रात फिर वर्षा होगी। जिस रात खूब पानी गिरे, वह मामूली रैण नही, महारैण कहलाती है।

तूठणो क्रिया है वरसने की ओर उवरेलो है उसके सिमटने की। तब चौमासा उठ जाता है, बीत जाता है। बरसने से सिमटने तक हर गाव, हर शहर अपने घरो की छत पर, आगन मे, खेतो मे, चौराहो पर और निर्जन मे भी बूदो को सजो लेने के लिए अपनी 'चादर' फैलाए रखता है।

पालर यानी वर्षा के जल को सग्रह कर लेने के तरीके भी यहा बादलो और बूदो की तरह अनत है। बूद बूद गागर भी भरती है और सागर भी — ऐसे सुभाषित पाठ्य पुस्तको मे नही, सचमुच अपने समाज की स्मृति मे समाए मिलते है। इसी स्मृति से श्रुति वनी। जिस बात को समाज ने याद रखा, उसे उसने आगे सुनाया और वढ़ाया और न जाने कव पानी के इस काम का इतना विशाल, व्यावहारिक और बहुत व्यवस्थित ढाचा खड़ा कर दिया कि पूरा समाज उसमे एक जी हो गया। इसका आकार इतना वड़ा कि राज्य के कोई तीस हजार गावो और तीन सो शहरो, कस्बो मे फैल कर वह निराकार-सा हो गया।

ऐसे निराकार सगठन को समाज ने न राज को, सरकार को सौपा, न आज की भाषा मे 'निजी' क्षेत्र को। उसने इसे पुरानी भाषा के निजी हाथ मे रख दिया। घर-घर, गाव-गाव लोगो ने ही इस ढाचे को साकार किया, सभाला और आगे वढ़ाया।

पिडवड़ी यानी अपनी मेहनत और अपने श्रम, परिश्रम से दूसरे की सहायता। समाज परिश्रम की, पसीने की वूदे बहाता रहा है, वर्षा की बूदो को एकत्र करने के लिए।

राजस्थान की रजत बूंदें

पसीने म तरवतर चेलवाजी कुई के भीतर काम कर रहे हे । कोई तीस पैतीस हा
गहरी खुदाई हो चुकी है । अव भीतर गरमी बढ़ती ही जाएगी । कुई का व्यास, घेरा बहु
ही सकरा हे । उखरू वैठे चेलवाजी की पीठ और छाती से एक एक हाथ की दूरी पर मिट
है । इतनी सकरी जगह मे खोदने का काम कुल्हाड़ी या फावड़े से नही हो सकता । खुद
यहा वसोली से की जा रही है । बसोली छोटी डडी का छोटे फावड़े जैसा औजार हो
है । नुकीला फल लोहे का और हत्था लकड़ी का ।

कुई की गहराई मे चल रहे मेहनती काम पर वहा की गरमी का असर पड़ेगा
गरमी कम करने के लिए ऊपर जमीन पर खड़े लाग बीच-बीच मे मुट्ठी भर रेत बहु
जोर के साथ नीचे फेकते है । इससे ऊपर की ताजी हवा नीचे फिकाती है और गहराई
जमा दमघोटू गरम हवा ऊपर लौटती है । इतने ऊपर से फेकी जा रही रेत के कण नी

काम कर रहे चेलवाजी के सिर पर लग सकते हे इसलिए वे अपने सिर पर कासे, पीतल या अन्य किसी धालु का एक वतन टोप की तरह पहने हुए हैं। नीचे थोड़ी खुदाई हो जाने के वाद चेलवाजी के पजो के आसपास मलवा जमा हो गया ह। ऊपर रस्सी से एक छोटा सा डोल या वाल्टी उतारी जाती हे। मिट्टी उसमे भर दी जाती हे। पूरी सावधानी के साथ ऊपर खीचते समय भी वाल्टी मे से कुछ रेत, ककड़ पत्थर नीचे गिर सकते ह। टोप इनसे भी चेलवाजी का सिर वचाएगा।

चेलवाजी यानी चेजारो, कुई की खुदाई ओर एक विशेप तरह की चिनाई करने वाले दक्षतम लोग। यह काम चेजा कहलाता है। चेजारो जिस कुई को वना रहे हे, वह भी कोई साधारण ढाचा नही हे। कुई यानी वहुत ही छाटा सा कुआ। कुआ पुलिग है, कुई स्त्रीलिग। यह छोटी भी केवल व्यास मे ही है। गहराई तो इस कुई की कही से कम नही। राजस्थान मे अलग-अलग स्थॉनो पर एक विशेप कारण से कुइयो की गहराई कुछ कम ज्यादा होती हे।

कुई एक और अर्थ मे कुए से विलकुल अलग है। कुआ भूजल को पाने के लिए वनता हे पर कुंई भूजल से ठीक वेसे नही जुड़ती जैसे कुआ जुड़ता है। कुई वर्षा के जल को वड़े विचित्र ढग से समेटती हे — तव भी जव वर्षा ही नही होती। यानी कुई मे न तो सतह पर वहने वाला पानी है, न भूजल है। यह तो 'नेति नेति' जेसा कुछ पेचीदा मामला है।

मरुभूमि मे रेत का विस्तार और गहराई अथाह हे। यहा वर्षा अधिक मात्रा मे भी हो तो उसे भूमि मे समा जाने मे देर नही लगती। पर कहीं-कही मरुभूमि मे रेत की सतह के नीचे प्राय दस-पद्रह हाथ से पचास साठ हाथ नीचे खड़िया पत्थर की एक पट्टी चलती है। यह पट्टी जहा भी है, काफी लबी-चौड़ी है पर रेत के नीचे दवी रहने के कारण ऊपर

प्रकृति की उदारता पर खड़ी कुई
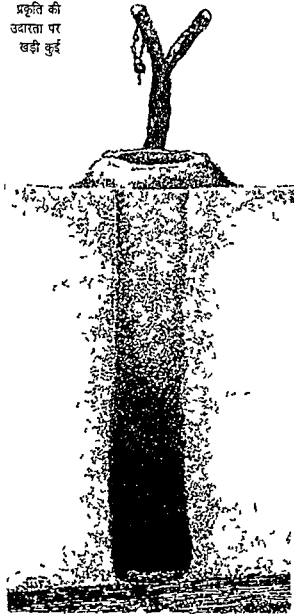
से दिखती नही है।

ऐसे क्षेत्रो मे बड़े कुए खोदते समय मिट्टी मे हो रहे परिवर्तन से खड़िया पट्टी का पता चल जाता है। बड़े कुओ मे पानी तो डेढ़ सो दो सौ हाथ पर निकल ही आता है पर वह प्राय खारा होता है। इसलिए पीने के काम मे नही आ सकता। बस तब इन क्षेत्रो मे कुइया बनाई जाती है। पट्टी खोजने मे पीढ़ियो का अनुभव भी काम आता है। बरसात का पानी किसी क्षेत्र मे एकदम 'बैठे' नही तो पता चल जाता है कि रेत के नीचे ऐसी पट्टी चल रही है।

यह पट्टी वर्षा के जल को गहरे खारे भूजल तक जाकर मिलने से रोकती है। ऐसी स्थिति मे उस बड़े क्षेत्र मे बरसा पानी भूमि की रेतीली सतह और नीचे चल रही पथरीली पट्टी के बीच अटक कर नमी की तरह फैल जाता है। तेज पड़ने वाली गरमी मे इस नमी की भाप बनकर उड़ जाने की आशका उठ सकती है। पर ऐसे क्षेत्रो मे प्रकृति की एक और अनोखी उदारता काम करती है।

रेत के कण बहुत ही बारीक होते है। वे अन्यत्र मिलने वाली मिट्टी के कणो की तरह एक दूसरे से चिपकते नही। जहा लगाव है, वहा अलगाव भी होता है। जिस मिट्टी के कण परस्पर चिपकते है, वे अपनी जगह भी छोड़ते है और इसलिए वहा कुछ स्थान खाली छूट जाता है। जैसे दोमट या काली मिट्टी के क्षेत्र मे गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार आदि मे वर्षा बद होने के बाद धूप निकलने पर मिट्टी के कण चिपकने लगते है और धरती मे, खेत और आगन मे दरारे पड़ जाती है। धरती की सचित नमी इन दरारो से गर्मी पड़ते ही वाष्प बनकर वापस वातावरण मे लोटने लगती है।

पर यहा बिखरे रहने मे ही सगठन है। मरुभूमि मे रेत के कण समान रूप से बिखरे

रहते है । यहा परस्पर लगाव नही, इसलिए अलगाव भी नही होता । पानी गिरने पर कण थोड़े भारी हो जाते है पर अपनी जगह नही छोड़ते । इसलिए मरुभूमि मे धरती पर दरारे नही पडती । भीतर समाया वर्षा का जल भीतर ही बना रहता है । एक तरफ थोड़े नीचे चल रही पट्टी इसकी रखवाली करती है तो दूसरी तरफ ऊपर रेत के असख्य कणो का कड़ा पहरा वेठा रहता है ।

इस हिस्से मे बरसी बूद बूद रेत मे समा कर नमी मे बदल जाती है । अब यहा कुई बन जाए तो उसका पेट, उसकी खाली जगह चारो तरफ रेत मे समाई नमी को फिर से बूदो मे बदलती हे । बूद-बूद रिसती हे और कुई मे पानी जमा होने लगता है — खारे पानी के सागर मे अमृत जेसा मीठा पानी ।

खारे पानी के सागर मे अमृत जैसा मीठा पानी

इस अमृत को पाने के लिए मरुभूमि के समाज ने खूब मथन किया है । अपने अनुभवो को व्यवहार मे उतारने का पूरा एक शास्त्र विकसित किया है । इस शास्त्र ने समाज के लिए उपलब्ध पानी को तीन रूपो मे वाटा हे ।

पहला रूप है पालर पानी । यानी सीधे बरसात से मिलने वाला पानी । यह धरातल पर वहता है और इसे नदी, तालाव आदि मे रोका जाता है । यहा आदि शब्द म भी वहुत कुछ छिपा है । उसका पूरा विवरण आगे कही और मिलेगा ।

पानी का दूसरा रूप पाताल पानी कहलाता है । यह वही भूजल है जा कुआ मे स निकाला जाता है ।

पालर पानी और पाताल पानी के बीच पानी का तीसरा रूप है, रेजाणी पानी । धरातल मे नीचे उतरा लेकिन पाताल मे न मिल पाया पानी रेजाणी है । वर्षा की मात्रा नापने मे भी इच या सेटीमीटर नही वल्कि रेजा शब्द का उपयोग होता है । आर रेजा का माप धरातल
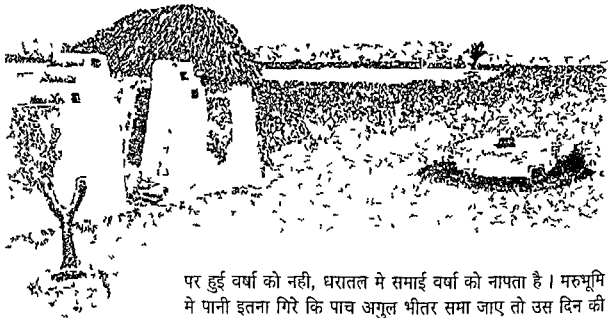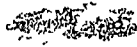
पर हुई वर्षा को नही, धरातल मे समाई वर्षा को नापता है। मरुभूमि मे पानी इतना गिरे कि पाच अगुल भीतर समा जाए तो उस दिन की वर्षा को पाच अगुल रेजो कहेगे।

रेजाणी पानी खड़िया पट्टी के कारण पाताली पानी से अलग बना रहता है। ऐसी पट्टी के अभाव मे रेजाणी पानी धीरे धीरे नीचे जाकर पाताली पानी मे मिलकर अपना विशिष्ट रूप खो देता है। यदि किसी जगह भूजल, पाताली पानी खारा है तो रेजाणी पानी भी उसमे मिलकर खारा हो जाता है।

इस विशिष्ट रेजाणी पानी को समेट सकने वाली कुई बनाना सचमुच एक विशिष्ट कला है। चार-पाच हाथ के व्यास की कुई को तीस से साठ-पैसठ हाथ की गहराई तक उतारने वाले चेजारो कुशलता ओर सावधानी की पूरी ऊचाई नापते हे।

चेजो यानी चिनाई का श्रेष्ठतम काम कुई का प्राण है। इसमे थोड़ी सी भी चूक चेजारो के प्राण ले सकती है। हर दिन थोड़ी थोड़ी खुदाई होती है, डोल से मलबा निकाला जाता है और फिर आगे की खुदाई रोक कर अब तक हो चुके काम की चिनाई की जाती है ताकि मिट्टी भसके, धसे नही।

वीस पच्चीस हाथ की गहराई तक जाते-जाते गरमी बढ़ती जाती है और हवा भी कम होने लगती है। तब ऊपर से मुट्ठी भर-भर कर रेत नीचे तेजी से फेकी जाती है—मरुभूमि मे जो हवा रेत के विशाल टीलो तक को यहा से वहा उड़ा देती है, वही हवा यहा कुई की गहराई मे एक मुट्ठी रेत से उड़ने लगती है और पसीने मे नहा रहे चेलवाजी को राहत दे जाती है। कुछ जगहो पर कुई बनाने का यह कठिन काम ओर भी कठिन हो जाता है। किसी-किसी जगह ईट की चिनाई से मिट्टी को रोकना सभव नही हो पाता। तव कुई को रस्से से 'बाधा' जाता है।

कुई पर सजगता का पहरा

पहले दिन कुई खोदने के साथ-साथ खीप नाम की घास का ढेर जमा कर लिया जाता है। चेजारो खुदाई शुरू करते है और वाकी लोग खीप की घास से कोई तीन अगुल मोटा रस्सा बटने लगते हे। पहले दिन का काम पूरा होते होते कुई कोई दस हाथ गहरी हो जाती है। इसके तल पर दीवार के साथ सटा कर रस्से का पहला गोला विछाया जाता है और फिर उसके ऊपर दूसरा, तीसरा, चौथा — इस तरह ऊपर आते जाते है। खीप घास से वना खुरदरा मोटा रस्सा हर घेरे पर अपना वजन डालता है और वटी हुई लड़िया एक दूसरे मे फस कर मजवूती से एक के ऊपर एक बैठती जाती है। रस्से का आखिरी छोर ऊपर रहता है।
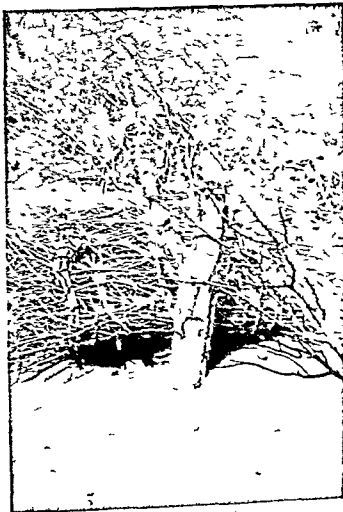
अगले दिन फिर कुछ हाथ मिट्टी खोदी जाती है और रस्से की पहले दिन जमाई गई कुडली दूसरे दिन खोदी गई जगह मे सरका दी जाती हे। ऊपर छूटी दीवार मे अव नया रस्सा वाधा जाता है। रस्से की कुडली को टिकाए रखने के लिए वीच-वीच म कहीं-कहीं चिनाई भी करते जाते है।

लगभग पाच हाथ के व्यास की कुई मे रस्से की एक ही कुडली का सिर्फ एक घेरा वनाने के लिए लगभग पद्रह हाथ लवा रस्सा चाहिए। एक हाथ की गहराई मे रस्से के

नए लोगो को तो समझ मे भी नही आएगा कि यहा कुई खुद रही है

आठ दस लपेटे खप जाते है और इतने मे ही रस्से की कुल लबाई डेढ़ सौ हाथ हो जाती है। अब यदि तीस हाथ गहरी कुई की मिट्टी को थामने के लिए रस्सा बाधना पड़े तो रस्से की लबाई चार हजार हाथ के आसपास बैठती है। नए लोगो को तो समझ मे भी नही आएगा कि यहा कुई खुद रही है कि रस्सा बन रहा है।

कही-कही न तो ज्यादा पत्थर मिलता है न खीप ही। लेकिन रेजाणी पानी है तो

वहा भी कुइया जरूर बनती है। ऐसी जगहो पर भीतर की चिनाई लकड़ी के लबे लट्ठो से की जाती है। लट्ठे अरणी, बण (किर) बावल या कुबट के पेड़ो की डगालो से बनाए जाते है। इस काम के लिए सबसे उम्दा लकड़ी अरणी की ही है। पर उम्दा या मध्यम दर्जे की लकड़ी न मिल पाए तो आक तक से भी काम लिया जाता है।

लट्ठे नीचे से ऊपर की ओर एक दूसरे मे फसा कर सीधे खड़े किए जाते हैं। फिर इन्हे खीप की रस्सी से बाधा जाता है। कही-कही चग की रस्सी भी काम मे लाते है। यह बधाई भी कुडली का आकार लेती है, इसलिए इसे सापणी भी कहते है।

नीचे खुदाई ओर चिनाई का काम कर रहे चेलवाजी को मिट्टी की खूब परख रहती है। खड़िया पत्थर की पट्टी आते ही सारा काम रुक जाता है। इस क्षण नीचे धार लग जाती है। चेजारो ऊपर आ जाते है।
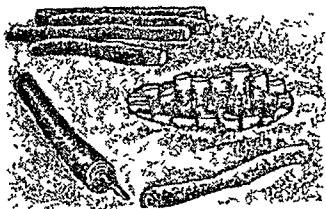
कुई की सफलता यानी सजलता उत्सव का अवसर बन जाती है। यो तो पहले दिन से काम करने वालो का विशेष ध्यान रखना यहा की परपरा रही है, पर काम पूरा होने पर तो विशेष भोज का आयोजन होता था। चेलवाजी को बिदाई के समय तरह-तरह की भेट दी जाती थी। चेजारो के साथ गाव का यह सबध उसी दिन नही टूट जाता था। आच प्रथा से उन्हे वर्ष-भर के तीज-त्योहारो मे, विवाह जैसे मगल अवसरो पर नेग, भेट दी जाती ओर फसल आने पर खलियान मे उनके नाम से अनाज का एक अलग ढेर भी लगता था। अब सिर्फ मजदूरी देकर भी काम करवाने का रिवाज आ गया है।

कई जगहो पर चेजारो के बदले सामान्य गृहस्थ भी इस विशिष्ट कला मे कुशल बन जाते थे। जैसलमेर के अनेक गावो मे पालीवाल ब्राह्मणो और मेघवालो (अब अनुसूचित कहलाई जाति) के हाथो से सौ-दो सौ बरस पहले बनी पार या कुइया आज भी बिना थके पानी जुटा रही हैं।

कुई का मुह छोटा रखने के तीन बड़े कारण हैं। रेत मे जमा नमी से पानी की बूदे बहुत धीरे धीरे रिसती हैं। दिन भर मे एक कुई मुश्किल से इतना ही पानी जमा कर पाती है कि उससे दो-तीन घड़े भर सके। कुई के तल पर पानी की मात्रा इतनी कम होती है कि यदि कुई का व्यास बड़ा हो तो कम मात्रा का पानी ज्यादा फैल जाएगा और तब उसे

ऊपर निकालना सभव नही होगा। छोटे व्यास की कुई मे धीरे धीरे रिस कर आ रहा पानी दो चार हाथ की उचाई ले लेता है। कई जगहो पर कुई से पानी निकालते समय छोटी वाल्टी के बदले छोटी चड़स का उपयोग भी इसी कारण से किया जाता हे। धातु की वाल्टी पानी म आसानी स डूबती नही। पर मोटे कपड़ या चमड़े की चड़स के मुह पर लोहे का वजनी कड़ा बधा होता है। चड़स पानी से टकराता है, ऊपर का वजनी भाग नीचे के भाग पर गिरता हे आर इस तरह कम मात्रा क पानी मे भी ठीक से डूव जाता है। भर जाने के वाद ऊपर उठते ही चड़स अपना पूरा आकार ले लेता हे।

हर दिन सोने का एक अडा देने वाली मुर्गी की कहानी को जमीन पर उतारती है कुई। इससे दिन भर मे बस दो-तीन घडा मीठा पानी निकाला जा सकता है।

पिछले दोर मे ऐसे कुछ गावो के आसपास से सड़के निकली हे, ट्रक दौड़े ह। ट्रको की फटी ट्यूव से भी छोटी चड़सी वनने लगी है।

कुई के व्यास का सवध इन क्षेत्रो मे पड़ने वाली तेज गरमी से भी है। व्यास वड़ा हो तो कुई के भीतर पानी ज्यादा फेल जाएगा। वड़ा व्यास पानी को भाप वनकर उड़ने से रोक नही पाएगा।

कुई को, उसके पानी को साफ रखने के लिए उसे ढक कर रखना जरूरी है। छोटे मुह को ढकना सरल होता है। हरेक कुई पर लकड़ी के वने ढक्कन ढके मिलेगे। कही कही खस की टट्टी की तरह घास-फूस या छोटी छोटी टहनियो से वने ढक्कनो का भी उपयोग किया जाता है। जहा नई सड़के निकली है और इस तरह नए और अपरिचित लोगो की आवक जावक भी बढ़ गई है, वहा अमृत जैसे इस मीठे पानी की सुरक्षा भी करनी पड़ती है। इन इलाको मे कई कुइयो के ढक्कनो पर छोटे छोटे ताले भी लगने लगे है। ताले कुई के ऊपर पानी खीचने के लिए लगी घिरनी, चकरी पर भी लगाए जाते हे।

कुई गहरी वने तो पानी खीचने की सुविधा के लिए उसके ऊपर घिरनी या चकरी भी लगाई जाती है। यह गरेड़ी, चरखी या फरेड़ी भी कहलाती है। फरेड़ी लोहे की दो भुजाओ पर भी लगती है। लेकिन प्राय यह गुलेल के आकार के एक मजबूत तने को काट कर, उसमे आर-पार छेद बना कर लगाई जाती है। इसे ओड़ाक कहते है। ओड़ाक और चरखी के विना इतनी गहरी और सकरी कुई से पानी निकालना वहुत कठिन काम वन सकता है। ओड़ाक ओर चरखी चड़सी को यहा वहा बिना टकराए सीधे ऊपर तक लाती है, पानी बीच मे छलक कर गिरता नही। वजन खीचने मे तो इससे सुविधा रहती ही है।

खड़िया पत्थर की पट्टी एक बड़े भाग से गुजरती है इसलिए उस पूरे हिस्से मे एक के बाद एक कुई बनती जाती हे। ऐसे क्षेत्र मे एक वड़े साफ-सुथरे मैदान मे तीस चालीस कुइया भी मिल जाती है। हर घर की एक कुई। परिवार बड़ा हो तो एक से अधिक भी।

निजी ओर सार्वजनिक सपत्ति का विभाजन करने वाली मोटी रेखा कुई के मामले म बड़े विचित्र ढग से मिट जाती है। हरेक की अपनी-अपनी कुई है। उसे बनाने और उससे पानी लेने का हक उसका अपना हक हे। लेकिन कुई जिस क्षेत्र मे बनती है, वह गाव समाज की सार्वजनिक जमीन हे। उस जगह बरसन वाला पानी ही बाद मे वर्ष भर नमी की तरह सुरक्षित रहेगा और इसी नमी से साल भर कुइया म पानी भरेगा। नमी की मात्रा तो वहा हो चुकी वर्षा से तय हो गई है। अब उस क्षेत्र मे बनने वाली हर नई कुई का अर्थ है, पहले से तय नमी का बटवारा। इसलिए निजी होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र मे बनी कुइयो पर ग्राम समाज का अकुश लगा रहता हे। बहुत जरूरत पड़ने पर ही समाज नइ कुई के लिए अपनी स्वीकृति देता है।

हर दिन सोने का एक अडा देने वाली मुर्गी की चिरपरिचित कहानी को जमीन पर उतारती है कुई। इससे दिन-भर मे बस दो-तीन घड़ा मीठा पानी निकाला जा सकता है। इसलिए प्राय पूरा गाव गोधूलि वेला मे कुइयो पर आता है। तब मेला सा लग जाता हे। गाव से सटे मैदान मे तीस चालीस कुइयो पर एक साथ घूमती घिरनियो का स्वर गोचर से लौट रहे पशुओ की घटियो और रभाने की आवाज मे समा जाता है। दो-तीन घड़े भर जाने पर डोल और रस्सिया समेट ली जाती हे। कुइयो के ढक्कन वापस बद हो जाते है। रात भर ओर अगले दिन भर कुइया आराम करेगी।

रेत के नीचे सब जगह खड़िया की पट्टी नही है, इसलिए कुई भी पूरे राजस्थान मे नही मिलेगी। चुरू, बीकानेर, जैसलमेर ओर बाड़मेर के कई क्षेत्रो मे यह पट्टी चलती हे और इसी कारण वहा गाव-गाव मे कुइया ही कुइया हे। जैसलमेर जिले के एक गाव खड़ेरो की ढाणी मे तो एक सौ बीस कुइया थी। लोग इस क्षेत्र को छह बीसी (छह गुणा बीस) के नाम से जानते थे। कही कही इन्हे पार भी कहते है। जैसलमेर तथा बाड़मेर के कई गाव पार के कारण ही आबाद है। और इसीलिए उन गावो के नाम भी पार पर ही हे। जैसे जानरे आलो पार और सिरगु आलो पार।

अलग-अलग जगहो पर खड़िया पट्टी के भी अलग-अलग नाम हे। कही यह चारोली है तो कही धाधड़ो, धड़धडो, कही पर बिट्टू रो बल्लियो के नाम स भी जानी जाती है तो कही इस पट्टी का नाम केवल 'खडी' भी है।

और इसी खडी के बल पर खारे पानी के बीच मीठा पानी देती खड़ी रहती हे कुई।

ठहरा पानी निर्मला

'बहना पानी निर्मला' कहावत राजस्थान मे ठिठक कर खड़ी हो जाती है। यहा कुडिया है, जिनमे पानी बरस भर, और कभी-कभी उससे भी ज्यादा समय तक ठहरा रह कर भी निर्मल बना रहता है।

सिद्धात वही है वर्षा की बूदो को यानी पालर पानी को एक खूब साफ सुथरी जगह मे रोक कर उनका सग्रह करना। कुडी, कुड, टाका — नाम या आकार बदल जाए, काम एक ही है — आज गिरी बूदो को कल के लिए रोक लेना। कुडी सब जगह है। पहाड़ पर बने किलो मे, मदिरो मे, पहाड़ की तलहटी मे घर के आगन मे, छत मे, गाव मे, गाव के बाहर निर्जन मे, रेत मे खेत म ये सब जगह सब समय मे बनती रही है। तीन सौ, चार सा बरस पुरानी कुडी भी है और अभी कल ही बनी कुडिया भी मिल जाएगी। और तो और स्टार टीवी के एटिना के ठीक नीचे भी कुडी दिख सकती है।

जहा जितनी भी जगह मिल सके, वहा गार-चूने से लीप कर एक ऐसा 'आगन' वना लिया जाता है, जो थोड़ी ढाल लिए रहता है। यह ढाल एक तरफ से दूसरी तरफ भी हो सकती है और यदि 'आगन' काफी वड़ा है तो ढाल उसके सब कोनो से बीच केद्र की तरफ भी आ सकती है। 'आगन' के आकार के हिसाव से, उस पर वरसने वाली वर्षा के हिमाव से इस केद्र मे एक कुड वनाया जाता है। कुड के भीतर की चिनाई इस ढग से की जाती है कि उसमे एकत्र होने वाले पानी की एक वूद भी रिसे नही, वर्ष भर पानी सुरक्षित और साफ सुथरा वना रहे।

जिस आगन से कुडी के लिए वर्षा का पानी जमा किया जाता है, वह आगोर कहलाता है। आगोर सज्ञा आगोरना क्रिया मे वनी है, वटोर लेने के अर्थ मे। आगोर को खूब साफ सुथरा रखा जाता है, वर्ष भर। वर्षा से पहले तो इसकी वहुत वारीकी से सफाई होती हे। जूते, चप्पल आगोर मे नही जा सकते।

आगोर की ढाल से वह कर आने वाला पानी कुडी के मडल, यानी घेरे मे चारो तरफ वने ओयरो यानी सुराखो से भीतर पहुचता है। ये छेद कही-कही इडु भी कहलाते है। आगोर की सफाई के वाद भी पानी के साथ आ सकने वाली रेत, पत्तिया रोकने के लिए ओयरो मे कचरा छानने के लिए जालिया भी लगती हैं। वड़ आकार की कुडियो मे वष भर पानी को ताजा वनाए रखने के लिए हवा ओर उजाले का प्रवध गोख (गवाक्ष) यानी झरोखा स किया जाता हे।

कुड छोटा हो या कितना भी वड़ा, इसे अछायो यानी खुला नही छोड़ा जाता। अछायो कुड अशोभनीय माना जाता है ओर पानी के काम मे शोभा तो होनी ही चाहिए। शोभा और शुचिता, साफ सफाई यहा साथ-साथ मिलती हे।

कुडियो का मुह अकसर गोलाकार वनता है इसलिए इसे ढक कर रखने के लिए गुवद वनाया जाता है। मदिर, मस्जिद की तरह उठा यह गुवद कुडी को भव्य भी बनाता है। जहा पत्थर की लवी पट्टिया मिलती है, वहा कुडो को गुवद के वदले पट्टियो से भी ढका जाता है। गुवद हो या पत्थर की पट्टी, उसके एक कोने मे लोहे या लकड़ी का एक ढक्कन ओर लगता है। इसे खोल कर पानी निकाला जाता है।

कई कुडिया या कुड इतने गहरे होते हे, तीस-चालीस हाथ गहरे कि उनमे से पानी किसी गहरे कुए की तरह ही निकाला जाता है। तब कुडी की जगत भी वनती है, उस पर चढ़ने क लिए पाच सात सीढ़िया भी ओर फिर ढक्कन के ऊपर गड़गड़ी, चखरी भी लगती है। चुरू के कई हिस्सो मे कुड वहुत वड़े और गहरे है। गहराई के कारण इन पर मजवूत चखरी लगाई जाती है और इतनी गहराई से पानी खीच कर ला रही वजनी वाल्टी

को सह सकने के लिए चखरी को दो सुदर मीनारो पर टिकाया जाता है। कही-कही चारमीनार-कुडी भी बनती है ।

जगह की कमी हो तो कुडी बहुत छोटी भी बनती है । तब उसका आगोर ऊचा उठा लिया जाता है। सकरी जगह का अर्थ ही है कि आसपास की जगह समाज या परिवार के किसी ओर काम मे लगी है। इसलिए एकत्र होने वाले पानी की शुद्धता के लिए आगोर ठीक किसी चबूतरे की तरह ऊचा उठा रहता है ।

बहुत बड़ी जोतो के कारण मरुभूमि मे गाव और खेतो की दूरी और भी बढ़ जाती है। खेत पर दिन भर काम करने के लिए भी पानी चाहिए। खेतो मे भी थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटी-बड़ी कुडिया बनाई जाती है ।

कुडी बनती ही ऐसे रेतीले इलाको मे है, जहा भूजल सौ-दो सो हाथ से भी गहरा और प्राय खारा मिलता है । बड़ी कुडिया भी बीस-तीस हाथ गहरी बनती है और वह भी रेत मे । *भीतर बूद-बूद भी रिसने लगे तो भरी-भराई कुडी खाली होने मे देर नही लगे ।*

इसलिए कुडी के भीतरी भाग मे सर्वोत्तम चिनाई की जाती है । आकार छोटा हो या बड़ा, चिनाई तो सौ टका ही होती है। चिनाई मे पत्थर या पत्थर की पट्टिया भी लगाई जाती है । सास यानी पत्थरो के बीच जोड़ते समय रह गई जगह मे फिर से महीन चूने का लेप किया जाता है । मरुभूमि मे तीस हाथ पानी भरा हो, और तीस बूद भी रिसन नही होगी — ऐसा वचन बड़े से बड़े वास्तुकार न दे पाए, चेलवाजी तो देते ही है ।

मरुभूमि मे
तीस हाथ पानी भरा हो, और तीस बूद भी
रिसन नही होगी —
ऐसा वचन बड़े से बड़े वास्तुकार न दे पाए,
चेलवाजी तो देते ही है

आगोर की सफाई और भारी सावधानी के वाद भी कुछ रेत कुडी मे पानी के साथ चली जाती है । इसलिए कभी कभी वर्ष के प्रारभ मे, चेत मे कुडी के भीतर उतर कर इसकी सफाई भी करनी पड़ती है । नीचे उतरने के लिए चिनाई के समय ही दीवार की गोलाई मे एक-एक हाथ के अतर पर *जरा-सी बाहर निकली पत्थर की एक एक छोटी छोटी पट्टी बिठा दी जाती है ।*

नीचे कुडी के तल पर जमा रेत आसानी से समेट कर निकाली जा सके, इसका भी पूरा ध्यान रखा जाता है। तल एक बड़े कढ़ाव जैसा ढालदार बनाया जाता है। इसे खमाड़ियो या कुडालियो भी कहते हैं। लेकिन ऊपर आगोर मे इतनी अधिक सावधानी रखी जाती है कि खमाड़ियो मे से रेत निकालने का काम दस से बीस बरस मे एकाध बार ही करना
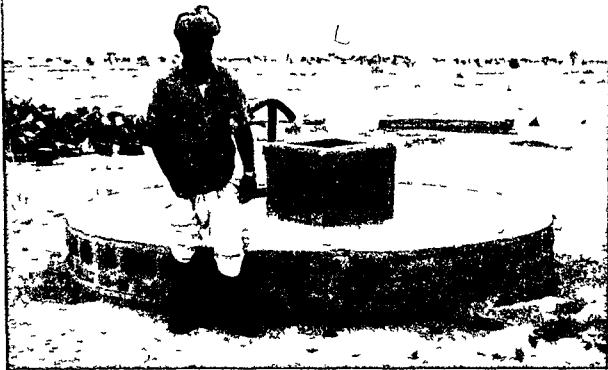
पड़ता है। एक पूरी पीढ़ी कुडी को इतने समार, यानी सभाल कर रखती है कि दूसरी पीढ़ी को ही उसमे सीढ़ियो से उतरने का मौका मिल पाता है। पिछले दौर मे सरकारो ने कही-कही पानी का नया प्रवध किया है, वहा कुडियो की रखवाली की मजबूत परपरा जरूर कमजोर हुई है।

रामदेवरा रेल फाटक पर पुण्य का काम

कुडी निजी भी है और सार्वजनिक भी। निजी कुडिया घरो के सामने, आगन मे, हाते यानी अहाते मे और पिछवाड़े,वाड़ो मे वनती है। सार्वजनिक कुडिया पचायती भूमि मे या प्राय दो गाव के वीच वनाई जाती हे। बड़ी कुडियो की चारदीवारी मे प्रवेश के लिए दरवाजा होता है। इसके सामने प्राय दो खुले होज रहते है। एक छोटा, एक वड़ा। इनकी ऊचाई भी कम ज्यादा रखी जाती है। ये खेल, थाला, हवाड़ो, अवाड़ो या उवारा कहलाते है। इनमे आसपास से गुजरने वाले भेड़ वकरियो, ऊट और गायो के लिए पानी भर कर रखा जाता है।

सार्वजनिक कुडिया भी लोग ही वनाते है। पानी का काम पुण्य का काम है। किसी

भी घर मे कोई अच्छा प्रसग आने पर गृहस्थ सार्वजनिक कुडी वनाने का सकल्प लेते हैं और फिर इसे पूरा करने मे गाव के दूसरे घर भी अपना श्रम देते हैं। कुछ सम्पन्न परिवार सार्वजनिक कुडी वना कर उसकी रखवाली का काम एक परिवार को सोप देते हैं। कुड के वड़े अहाते मे आगोर के वाहर इस परिवार के रहने का प्रवध कर दिया जाता है। यह व्यवस्था दोनो तरफ से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती है। कुडी वनाने वाले परिवार का मुखिया अपनी सपत्ति का एक निश्चित भाग कुडी की सारसभाल के लिए अलग रख देता है। वाद की पीढ़िया भी इसे निभाती हैं। आज भी यहा ऐसे वहुत से कुड है, जिनको वनाने

फोग की प्रसिद्ध कुडी

वाले परिवार नौकरी, व्यापार के कारण यहा से निकल कर असम, वगाल, वबई जा वसे हैं पर रखवाली करने वाले परिवार कुड पर ही वसे हैं। ऐसे वड़े कुड आज भी वर्षा के जल का सग्रह करते हैं और पूरे वरस भर किसी भी नगरपालिका से ज्यादा शुद्ध पानी देते हैं।

कई कुड टूट फूट भी गए हैं कहीं-कहीं पानी भी खराब हुआ है पर यह सब समाज की टूट फूट के अनुपात में ही मिलेगा। इसमें इस पद्धति का कोई दोष नहीं है। यह पद्धति तो नई सामाजिक और अव्यावहारिक मान्यताओं के दोष भी ढकने की क्षमता रखती है।

इन इलाको मे पिछले दिनो जल सकट 'हल' करने के लिए जितने भी नलकूप और 'हैडपप' लगे, उनमे पानी खारा ही निकला। पीने लायक मीठा पानी इन कुड, कुडियो मे ही उपलब्ध था। इसलिए बाद मे अकल आने पर कही कही कुडो के ऊपर ही 'हैडपप' लगा दिए गए है। बहुप्रचारित इदिरा गाधी नहर से ऐसे कुछ ही क्षेत्रो मे पीने का पानी पहुचाया गया है और इस पानी का सग्रह कही तो नई बनी सरकारी टकियो मे किया गया है और कही-कही इन्ही पुराने कुडो मे।

इन कुडियो ने पुराना समय भी देखा है, नया भी। इस हिसाब से वे समयसिद्ध है। स्वयसिद्ध इनकी एक और विशेषता है। इन्हे बनाने के लिए किसी भी तरह की सामग्री कही और से नही लानी पड़ती। मरुभूमि मे पानी का काम करने वाले विशाल सगठन का एक बड़ा गुण है — अपनी ही जगह उपलब्ध चीजो से अपना मजबूत ढाचा खड़ा करना। किसी जगह कोई एक सामग्री मिलती है, पर किसी और जगह पर वह है नही — पर कुडी वहा भी बनेगी।

जहा पत्थर की पट्टिया निकलती है, वहा कुडी का मुख्य भाग उसी से बनता है। कुछ जगह यह नही है। पर वहा फोग नाम का पेड़ खड़ा है साथ देने। फोग की टहनियो को एक दूसरे मे गूथ कर, फसा कर कुडी के ऊपर का गुबदनुमा ढाचा बनाया जाता है। इस पर रेत, मिट्टी और चूने का मोटा लेप लगाया जाता है। गुबद के ऊपर चढ़ने के लिए भीतर गुथी लकड़ियो का कुछ भाग बाहर निकाल कर रखा जाता है। बीच मे पानी निकालने की जगह। यहा भी वर्षा का पानी कुडी के मडल मे बने ओयरो, छेद से जाता है। पत्थर वाली कुडी मे ओयरो की सख्या एक से अधिक रहती है, लेकिन फोग की कुडियो मे सिर्फ एक ही रखी जाती है। कुडी का व्यास कोई सात-आठ हाथ, ऊचाई कोई चार हाथ और पानी जाने वाला छेद प्राय एक बित्ता बड़ा होता है। वर्षा का पानी भीतर कुडी मे जमा करने के बाद बाकी दिनो इस छेद को कपड़ो को लपेट कर बनाए गए एक डाट से ढक कर रखते है। फोग वाली कुडिया अलग-अलग आगोर के बदले एक ही बड़े आगोर मे बनती है, कुइयो की तरह। आगोर के साथ ही साफ लिपे-पुते सुदर घर और वैसी ही लिपी पुती कुडिया चारो तरफ फैली विशाल मरुभूमि मे लुकाछिपी का खेल खेलती लगती है।

राजस्थान मे रगो के प्रति एक विशेष आकर्षण है। लहगे, ओढ़नी और चटकीले रगो की पगड़िया जीवन के सुख और दुख मे रग बदलती है। पर इन कुडियो का केवल एक ही रग मिलता है — केवल सफेद। तेज धूप और गरमी के इस इलाके मे यदि कुडियो पर कोई गहरा रग हो तो वह बाहर की गरमी सोख कर भीतर के पानी पर भी अपना

असर छोड़ेगा । इसलिए इतना रगीन समाज कुडियो को सिर्फ सफेद रग मे रगता है । सफेद परत तेज धूप की किरणो को वापस लौटा देती है । फोग की टहनियो से बना गुवद भी इस तेज धूप मे गरम नही होता । उसमे चटक कर दरारे नही पड़ती और भीतर का पानी ठडा बना रहता है ।

पिछले दौर मे किसी विभाग ने एक नई योजना के अतर्गत उस इलाके मे फोग से बनने वाली कुडियो पर कुछ प्रयोग किए थे । फोग के बदले नई आधुनिक सामग्री— सीमेट का उपयोग किया । प्रयोग करने वालो को लगा होगा कि यह आधुनिक कुडी ज्यादा मजबूत होगी । पर ऐसा नही हुआ । सीमेट से बनी आदर्श कुडियो का ऊपरी गुवद इतनी तेज गरमी सह नही सका, वह नीचे गहरे गड्ढे मे गिर गया । नई कुडी मे भीतर की चिनाई भी रेत और चूने के बदले सीमेट से की गई थी । उसमे भी अनगिनत दरारे पड़ गई । फिर उन्हे ठीक करने के लिए उनमे डामर भरा गया । 'मरुभट्टी' मे डामर भी पिघल गया । वर्षा मे जमा किया सारा पानी रिस गया । तब लोगो ने यहा फिर से फोग, रेत और चूने से बनने वाली समयसिद्ध कुडी को अपनाया और आधुनिक सामग्री के कारण उत्पन्न जल सकट को दूर किया ।

मरुभूमि मे कही-कही खड़िया पट्टी बहुत नीचे न होकर काफी ऊपर आ जाती है । चार पाच हाथ । तब कुई बनाना सभव नही होता । कुई तो रेजाणी पानी पर चलती है । पट्टी कम गहराई पर हो तो उस क्षेत्र मे रेजाणी पानी इतना जमा नही हो पाएगा कि वर्ष भर कुई घड़ा भरती रह सके । इसलिए ऐसे क्षेत्रो मे इसी खड़िया का उपयोग कुडी बनाने के लिए किया जाता हे । खड़िया के बड़े-बड़े टुकड़े खदान से निकाल कर लकड़ी की आग मे पका लिए जाते है । एक निश्चित तापमान पर ये बड़े डले टूट टूट कर छोटे छोटे टुकड़ो मे बदल जाते हे । फिर इन्हे कूटते है । आगोर का ठीक चुनाव कर कुडी की खुदाई की जाती है । भीतर की चिनाई और ऊपर का गुवद भी इसी खड़िया चूरे से बनाया जाता है । पाच छह हाथ के व्यास वाला यह गुवद कोई एक बित्ता मोटा रखा जाता है । इस पर दो महिलाए भी खड़े होकर पानी निकाले तो यह टूटता नही ।

मरुभूमि मे कई जगह चट्टाने है । इनसे पत्थर की पट्टिया निकलती है । इन पट्टियो की मदद से बड़े बड़े कुड तैयार होते हे । ये पट्टिया प्राय दो हाथ चौड़ी और चौदह हाथ लबी रहती हे । जितना बड़ा आगोर हो, जितना अधिक पानी एकत्र हो सकता हो, उतना ही बड़ा कुड इन पट्टियो से ढक कर बनाया जाता है ।

घर छोटे हो, बड़े हो, कच्चे हो या पक्के — कुडी तो उनमे पक्की तौर पर बनती ही है । मरुभूमि मे गाव दूर दूर बसे है । आबादी भी कम है । ऐसे छितरे हुए गावो को
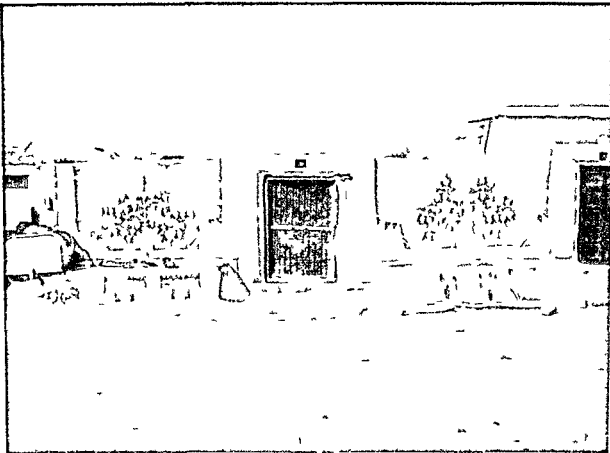
पानी की किसी केंद्रीय व्यवस्था से जोड़ने का काम सभव ही नही है। इसलिए समाज ने यहा पानी का सारा काम बिलकुल विकेंद्रित रखा, उसकी जिम्मेदारी को आपस मे बूद-बूद बाट लिया। यह काम एक नीरस तकनीक, यान्त्रिक न रह कर एक सस्कार मे बदल गया। ये कुडिया कितनी सुदर हो सकती है, इसका परिचय दे सकते हे जैसलमेर के गाव।

गेरू चूने से सजे चबूतरेनुमा कुड रामगढ़ जैसलमेर

हर गाव मे कोई पद्रह-बीस घर ही है। पानी यहा बहुत ही कम बरसता है। जैसलमेर की ओसत वर्षा से भी कम का क्षेत्र है यह। यहा घर के आगे एक बड़ा-सा चबूतरा बना मिलता है। चबूतरे के ऊपर ओर नीचे दीवारो पर रामरज, पीली मिट्टी ओर गेरू से बनी सुदर अल्पनाए — मानो रगीन गलीचा बिछा हो। इन पर घर का सारा काम होता है। अनाज सुखाया जाता हे, बच्चे खेलते हे, शाम को इन्ही पर बड़ो की चौपाल बैठती है ओर यदि कोई अतिथि आ जाए तो रात को उसका डेरा भी इन्ही चबूतरो पर जमता हे।

पर ये सुदर चबूतरे केवल चबूतरे नही है। ये कुड है। घर की छोटी-सी छत, आगन

या सामने मैदान मे वरसने वाला पानी इनमे जमा होता है। किसी वरस पानी कम गिरे और ये कुड पूरे भर नही पाए तो फिर पास दूर के किसी कुए या तालाव से ऊटगाड़ी के माध्यम से पानी लाकर इनमे भर लिया जाता है।

कुड-कुडी जैसे ही होते है टाके। इनमे आगन के वदले प्राय घरो की छतो से वर्षा का पानी एकत्र किया जाता है। जिस घर की जितनी वड़ी छत, उसी अनुपात मे उसका उतना ही वड़ा टाका। टाको के छोटे वड़े होने का सवध उनमे रहने वाले परिवारो के छोटे वड़े होने से भी है और उनकी पानी की आवश्यकता से भी। मरुभूमि के सभी गाव, शहरो के घर इसी ढग से वनते रहे हैं कि उनकी छतो पर वरसने वाला पानी नीचे वने टाको मे आ सके। हरेक छत वहुत ही हल्की सी ढाल लिए रहती है। ढाल के मुह की तरफ एक साफ सुथरी नाली वनाई जाती है। नाली के सामने ही पानी के साथ आ सकने वाले कचरे को रोकने का प्रवध किया जाता है। इससे पानी छन कर नीचे टाके मे जमा होता है। १० १२ सदस्यो के परिवार का टाका प्राय पद्रह-वीस हाथ गहरा और इतना ही लवा चौड़ा रखा जाता है।

टाका किसी कमरे, वैठक या आगन के नीचे रहता है। यह भी पक्की तरह से ढका

जयगढ़ का करोड़पति टाका
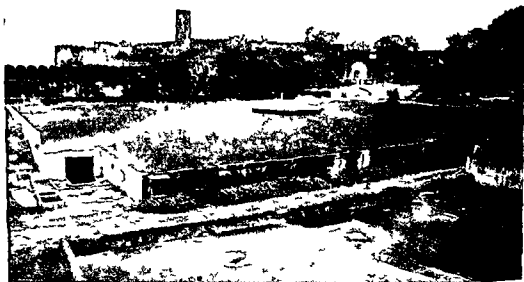
रहता है। किसी कोने मे लकड़ी के एक साफ-सुथरे ढक्कन से ढकी रहती है मोखी, जिसे खोल कर बाल्टी से पानी निकाला जाता है। टाके का पानी बरस-भर पीने और रसोई के काम मे लिया जाता है। इसकी शुद्धता बनाए रखने के लिए इन छतो पर भी चप्पल जूते पहन कर नही जाते। गरमी की रातो मे इन छतो पर परिवार सोता जरूर है पर अबोध बच्चो को छतो के किसी ऐसे हिस्से मे सुलाया जाता है, जो टाके से जुड़ा नही रहता। अबोध बच्चे रात को बिस्तरा गीला कर सकते है और इससे छत खराब हो सकती है।

जयगढ़ मे पानी के 'खजाने' का प्रवेश द्वार

पहली सावधानी तो यही रखी जाती है कि छत, नालिया और उससे जुड़ा टाका पूरी तरह साफ रहे। पर फिर भी कुछ वर्षों के अतर पर गरमी के दिनो मे, *यानी बरसात से ठीक* पहले जब वर्ष भर का पानी कम हो चुका हो, टाको की सफाई, धुलाई भीतर से भी की जाती है। भीतर उतरने के लिए छोटी छोटी सीढ़िया ओर तल पर वही खमाड़ियो बनाया जाता है ताकि साद को आसानी से हटा सके। कही-कही टाको को बड़ी छतो के साथ-साथ घर के बड़े आगन से भी जोड़ लेते है। तब जल सग्रह की इनकी क्षमता दुगनी हो जाती है। ऐसे विशाल टाके भले ही किसी एक बड़े घर के होते हो, उपयोग की दृष्टि से तो उन पर पूरा मोहल्ला जमा हो जाता है।

मोहल्ले, गाव, कस्बो से बहुत दूर निर्जन क्षेत्रो मे भी टाके बनते है। बनाने वाले इन्हे अपने लिए नही, अपने समाज के लिए बनाते है। 'स्वामित्व विसर्जन' का इससे अच्छा उदाहरण शायद ही मिले कोई। ये टाके पशुपालको, ग्वालो के काम आते है। सुबह कधे पर भरी कुपड़ी (मिट्टी की चपटी सुराही) टाग कर चले ग्वाले, चरवाहे दोपहर तक भी नही पहुच पाते कि कुपड़ी खाली हो जाती है। लेकिन आसपास ही मिल जाता है कोई टाका। हरेक टाके पर रस्सी बधी बाल्टी या कुछ नही तो टीन का डिब्बा तो रखा ही रहता है।

पानी के खजाने का नक्शा

रेतीले भागो मे जहा कही भी थोड़ी-सी पथरीली या मगरा यानी मुरम वाली जमीन मिलती है, वहा टाका बना दिया जाता है। यहा जोर पानी की मात्रा पर नही, उसके सग्रह पर रहता है। 'चुर्रो' के पानी को भी रोक कर टाके भर लिए जाते है। चुर्रो यानी रेतीले टीले के बीच फसी ऐसी छोटी जगह, जहा वर्षा का ज्यादा पानी नही बह सकता। पर कम बहाव भी टाके को भरने के लिए रोक लिया जाता है। ऐसे टाको मे आसपास थोड़ी 'आड़' बना कर भी पानी की आवक बढ़ा ली जाती है।

नए हिसाब से देखे तो छोटी से छोटी कुडी, टाके मे कोई दस हजार लीटर और मझौले कुडो मे पचास हजार लीटर पानी जमा किया जाता हे। बड़े कुड ओर टाके तो बस लखटकिया ही होते है। लाख दो लाख लीटर पानी इनमे समाए रहता है।

लेकिन सबसे बड़ा टाका तो करोड़पति ही समझिए। इसमे साठ लाख गैलन यानी लगभग तीन करोड़ लीटर पानी समाता है। यह आज से कोई ३५० बरस पहले जयपुर के पास जयगढ़ किले मे बनाया गया था। कोई १५० हाथ लबा चौड़ा यह विशाल टाका चालीस हाथ गहरा है। इसकी विशाल छत भीतर पानी मे डूबे इक्यासी खभो पर टिकाई गई है। चारो तरफ गोख, यानी गवाक्ष बने है, ताजी हवा और उजाले को भीतर पहुचाने के लिए। इनसे पानी वर्ष-भर निर्दोष बना रहता है। टाके के दो कोनो से भीतर उतरन के लिए दो तरफ दरवाजे है। दोनो दरवाजो को एक लबा गलियारा जोड़ता है और दोनो तरफ से पानी तक उतरने के लिए सीढ़िया है। यही से उतर कर वहगियो से पानी ऊपर लाया जाता है। बाहर लगे गवाक्षो मे से किसी एकाध की परछाई खभो के बीच से नीचे

पानी पर पड़ती है तो अदाज लगता है कि पानी कितना नीला है ।

यह नीला पानी किले के आसपास की पहाड़ियो पर बनी छोटी छोटी नहरो से एक बड़ी नहर मे आता है । सड़क जैसी चौड़ी यह नहर किले की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते हुए किले की दीवार से नीचे उतर कर किले के भीतर पहुचती है ।

वर्षा से पहले नहरो की सफाई तो होती ही है पर फिर भी पहले झले का पानी इस टाके मे नही आता । मुख्य बड़े टाके के साथ दो और टाके है, एक खुला और एक वद । इन टाको के पास खुलने वाली बड़ी नहर मे दो फाटक लगे है । शुरू मे वड़े टाके की ओर पानी ले जाने वाली नहर का फाटक वद रखा जाता है और खुले टाके का फाटक खोल दिया जाता है । पहले झले का पानी नहरो को धोते-साफ करते हुए, खुले टाके मे चला जाता है, और फिर उससे सटे वद टाके मे । इन दोनो टाको के पानी का उपयोग पशुओ के काम आता रहा है । जयगढ़ किला था और कभी यहा पूरी फौज रहती थी । फौज मे हाथी, घोड़े, ऊट — सव कुछ था । फिर इतने वड़े किले की साफ-सफाई भी इन पहले दो टाको के पानी से होती थी ।

इस नहर से भरता है जयगढ़ का खजाना

जव पानी का पूरा रास्ता, नहरो का पूरा जाल धुल जाए, तव पहला फाटक गिरता है ओर दूसरा फाटक खुलता है ओर मुख्य टाका तीन करोड़ लीटर पानी झेलने के लिए तैयार हो जाता है । इतनी बड़ी क्षमता का यह टाका किले की जरूरत के साथ साथ किले की सुरक्षा के लिए भी वनाया गया था । कभी किला शत्रुओ से घिर जाए तो लवे समय तक भीतर पानी की कमी नही रहे ।

राजा गए, उनकी फौज गई । अव आए है जयपुर घूमने आने वाले पर्यटक । अच्छी खासी चढ़ाई चढ़ कर आने वाले हर पर्यटक की थकान इस टाके के शीतल ओर निर्मल जल से दूर होती है ।

टाको ओर कुडो मे ठहरा पानी इतना निर्मल हो सकता है, इसका अदाज देश भर मे वहती कहावत को भी नही रहा होगा ।

बिंदु में सिंधु समान

भक्ति मे डूबे सत-कवियो ने 'विदु मे सिधु समान' कहा। घर गिरस्ती मे डूबे लोगो ने इसे पहले मन मे और फिर अपनी धरती पर कुछ इस रीति से उतारा कि 'हेरनहार हिरान' यानी देखने वाले हैरान हो जाए।

पालर पानी यानी वर्षा के पानी को वरुण देवता का प्रसाद मान कर ग्रहण करना और फिर उसका एक कण भी, एक वूद भी यहा वहा बगरे नही — ऐसी श्रद्धा से उसके सग्रह का काम आध्यात्मिक भी था और निपट सासारिक भी। विशाल मरुभूमि मे इसके बिना जीवन कैसे हो सकता था।

पुर शब्द सब जगह है पर कापुर शब्द शायद केवल यही मिलता है। कापुर यानी बुनियादी सुविधाओ से वचित गाव। भाषा मे कापुर शब्द रखा गया पर कोई गाव कापुर न कहला सके इसका भी पक्का प्रबध किया।

वध-वधा, ताल-तलाई, जोहड़-जोहड़ी, नाडी, तालाव, सरवर, सर, झील, देईवध जगह, डहरी, खडीन ओर भे — इन सवको विदु से भर कर सिधु समान वनाया गया। आज के नए समाज ने जिस क्षेत्र को पानी के मामले मे एक असभव क्षेत्र माना है, वहा पुराने समाज ने कहा क्या-क्या सभव है — इस भावना से काम किया। साई 'इतना' दीजिए के वदले साई 'जितना' दीजिए वामे कुटुम समा कर दिखाया।

माटी ओर आकाश के वदलते रूपो के साथ ही यहा तालावो के आकार, प्रकार और उनके नाम भी वदल जाते है। चारो तरफ मजवूत पहाड़ हो, पानी खूव गिरता हो तो उसे वर्ष भर नही, वर्षो तक रोक सकने वाली झीलो का, वड़े-वड़े तालावो का निर्माण हुआ। ये वड़े काम केवल राज परिवारो ने ही किए हो, ऐसा नही था। कई झील और वड़े-वड़े तालाव भीलो ने, वजारो ने, चरवाहो ने भी वर्षो की मेहनत से तैयार किए थे।

अच्छी पगार पाने वाले वहुत से इतिहासकारो ने इस तरह के वड़े कामो को वेगार-प्रथा से जोड़कर देखा है। पर अपवादो को नियम नही मान सकते हैं। इनमे से कुछ काम किसी अकाल के दोरान लोगो को थामने, अनाज पहुचाने और साथ ही वाद मे आ सकने वाले किसी ओर अकाल से निपट सकने की ताकत जुटाने के लिए किए गए थे तो कुछ अच्छे दौर मे ओर अच्छे भविष्य के लिए पूरे हुए थे।

पानी की आवक पूरी नही हो, रोक लेने के लिए जगह भी छोटी हो तो उस जगह को छोड़ नहीं देना है — उस पर तालाव के वड़े कुटुव की सबसे छोटी सदस्या–नाडी वनी मिलेगी। रेत की छोटी पहाड़ी, थली या छोटे से मगरे के आगोर से वहुत ही थोड़ी मात्रा मे वहने वाले पानी का पूरा सम्मान करती है नाडी। उसे वह कर बर्वाद नही होने देती है नाडी। साधन, सामग्री कच्ची यानी मिट्टी की ही होती है, पर इसका यह अर्थ नही कि नाडी का स्वभाव भी कच्चा ही होगा। यहा दो सौ, चार सो साल पुरानी नाडिया भी खड़ी मिल जाएगी। नाडियो मे पानी महीने-डेढ़ महीने से सात-आठ महीने तक भी रुका रहता है। छोटे से छोटे गाव मे एक से अधिक नाडिया मिलती हैं। मरुभूमि मे वसे गावो मे इनकी सख्या हर गाव मे दस-वारह भी हो सकती है। जैसलमेर मे पालीवालो के ऐतिहासिक चोरासी गावो मे सात सो से अधिक नाडिया या उनके चिन्ह आज भी देखे जा सकते है।

तलाई या जोहड़-जोहड़ी मे पानी नाडी से कुछ ज्यादा देरी तक और कुछ अधिक मात्रा मे जमा किया जाता है। इनकी पाल पर पत्थर का काम, छोटा-सा घाट, पानी मे उतरने के लिए पाच सात छोटी सीढ़ियो से लेकर महलनुमा छोटी सी इमारत भी खड़ी मिल सकती है।

तलाई वहा भी है, जहा और कुछ नही हो सकता। राजस्थान मे नमक की झीलो के आसपास फैले लवे चोड़े भाग मे पूरी जमीन खारी है। यहा वर्षा की बूदे धरती पर पड़ते ही खारी हो जाती है। भूजल, पाताल पानी खारा, ऊपर बहने वाला पालर पानी खारा और इन दो के बीच अटका रेजाणी पानी भी खारा। यहा नए नलकूप लगे, हैंडपप लगे — सभी ने खारा पानी उलीचा। लेकिन ऐसे हिस्सो मे भी चार सो-पाच सौ साल पुरानी तलाइया कुछ इस ढग से बनी मिलेगी कि वर्षा की बूदो को खारी धरती से दो चार हाथ ऊपर उठे आगोर मे समेट कर वर्ष-भर मीठा पानी देती है।

ऐसी अधिकाश तलाइया कोई चार सौ साल पुरानी है। यह वह दोर था जव नमक का सारा काम बजारो के हाथ मे था। वजारे हजारो वैलो का कारवा लेकर नमक का कारोबार करने इस कोने से उस कोने तक जाते थे। ये रास्ते मे पड़ने वाले गावो के वाहरी हिस्सो मे पड़ाव डालते थे। उन्हे अपने पशुओ के लिए भी पानी चाहिए था। बजारे नमक का स्वभाव जानते थे कि वह पानी मे घुल जाता है। वे पानी का भी स्वभाव जानते थे कि वह नमक को अपने मे मिला लेता है — लेकिन उन्होने इन दोनो के इस घुल मिल कर रहने वाले स्वभावो को किस चतुराई से अलग-अलग रखा — यह वताती है साभर झील के लवे चौड़े खारे आगोर मे जरा सी ऊपर उठ कर बनाई गई तलाइया।

बीसवी सदी की सब तरह की सरकारे ओर इक्कीसवी सदी मे ले जाने वाली सरकार भी ऐसे खारे क्षेत्रो के गावो के लिए मीठा पानी नही जुटा पाई। पर बजारो ने तो इस इलाके का नमक खाया था — उन्ही ने इन गावो को मीठा पानी पिलाया है। कुछ बरस पहले नई पुरानी सरकारो ने इन वजारो की तलाइयो के आसपास ठीक वैसी ही नई तलाई बनाने की कोशिश की पर नमक ओर पानी के 'घुल मिल' स्वभाव को वे अलग नही कर पाई।

पानी आने ओर उसे रोक लेने की जगह और ज्यादा मिल जाए तो फिर तलाई से आगे बढ़ कर तालाब बनते रहे है। इनमे वर्षा का पानी अगली वर्षा तक बना रहता है। नई भागदोड़ के कारण पुराने कुछ तालाव नष्ट जरूर हुए है पर आज भी वर्ष-भर भरे रहने वाले तालाबो की यहा कमी नही हे। इसीलिए जनगणना करने वालो को भरोसा तक नही होता कि मरुभूमि के गावो मे इतने सारे तालाब कहा से आ गए है। सरकारे अपनी ऐसी रिपोर्ट मे यह बतलाने से कतराती है कि इन्हे किनने वनाया है। यह सारा प्रवध समाज ने अपने दम पर किया था और इसकी मजबूती इतनी कि उपेक्षा के इस लवे दौर के बाद भी यह किसी न किसी रूप मे आज भी टिका है और समाज को भी टिकाए हुए हे।

गजेटियर मे जेसलमेर का वर्णन तो वहुत डरावना है "यहा एक भी वारामासी

मीठी तलाई मे बदलता नमक का स्वभाव

नदी नही है। भूजल १२५ से २५० फुट और कही-कही तो ४०० फुट नीचे हे। वर्षा अविश्वसनीय रूप से कम हे, सिर्फ १६ ४० सेटीमीटर। पिछले ७० वर्षो के अध्ययन के अनुसार वर्ष के ३६५ दिनो मे से ३५५ दिन सूखे गिने गए हे। यानी १२० दिन की वर्षा ऋतु यहा अपने सक्षिप्ततम रूप मे केवल १० दिन के लिए आती है।"

लेकिन यह सारा हिसाव किताव कुछ नए लोगो का है। मरुभूमि के समाज ने १० दिन की वर्षा मे करोड़ो रजत वूदो को देखा ओर फिर उनको एकत्र करने का काम घर-घर मे, गाव गाव मे और अपने शहरो तक मे किया। इस तपस्या का परिणाम सामने है

जैसलमेर जिले मे आज ५१५ गाव है। इनमे से ५३ गाव किसी न किसी वजह से उजड़ चुके है। आवाद है ४६२। इनमे से सिर्फ एक गाव को छोड़ हर गाव मे पीने के पानी का प्रवध है। उजड़ चुके गावो तक मे यह प्रवध कायम मिलता है। सरकार के आकड़ो के अनुसार जैसलमेर के ९९ ७८ प्रतिशत गावो मे तालाब, कुए और 'अन्य' स्रोत है। इनमे नल, ट्यूववैल जैसे नए इतजाम कम ही है। इस सीमात जिले के ५१५

गावो मे से केवल १ ७५ प्रतिशत गावो मे विजली है । इसे हिसाव की सुविधा के लिए २ प्रतिशत कर ले तव भी ग्यारह गाव वेठेगे । यह आकड़ा पिछली जनगणना रिपोर्ट का है । मान ले कि इस वीच मे ओर भी विकास हुआ है तो पहले के ११ गावो मे २० ३० गाव और जोड़ ले । ५१५ मे से विजली वाले गावो की सख्या तव भी नगण्य ही होगी। इसका एक अर्थ यह भी है कि वहुत सी जगह ट्यूववैल विजली से नहीं, डीजल तेल से चलते है । तेल वाहर दूर से आता है । तेल का टैकर न आ पाए तो पप नहीं चलेगे, पानी नही मिलेगा । सव कुछ ठीक ठाक चलता रहा तो भी आगे पीछे ट्यूववैल से जलस्तर घटेगा ही । उसे जहा के तहा थामने का कोई तरीका अभी तो हे नही । वेसे कहा जाता है कि जैसलमेर के नीचे भूजल का अच्छा भडार हे । पर जल की इस गुल्लक मे विना कुछ डाले सिर्फ निकालते रहने की प्रवृत्ति कभी तो धोखा देगी ही ।

एक वार फिर दुहरा ले कि मरुभूमि के सवसे विकट माने गए इस क्षेत्र मे ९९ ७८ प्रतिशत गावो मे पानी का प्रवध हे ओर अपने दम पर है । इसी के साथ उन सुविधाओ की तुलना करे जिन्हे जुटाना नए समाज की नई सस्थाओ, मुख्यत सरकार की जिम्मेदारी मानी जाती है । पक्की सड़को से अभी तक केवल १९ प्रतिशत गाव जुड़ पाए हैं, डाक आदि की सुविधा ३० प्रतिशत तक फेल पाई है । चिकित्सा आदि की देखरेख ९ प्रतिशत तक पहुच सकी है । शिक्षा सुविधा इन सवकी तुलना मे थोड़ी वेहतर है — ५० प्रतिशत गावो मे । यहा इस वात पर भी ध्यान देना चाहिए कि डाक, चिकित्सा, शिक्षा या विजली की सुविधाए जुटाने के लिए सिर्फ एक निश्चित मात्रा मे पैसा चाहिए । राज्य के कोष मे उसका प्रावधान रखा जा सकता है, जरूरत पड़ने पर किसी ओर मद से या अनुदान के सहारे उसे वढ़ाया जा सकता है । फिर भी हम पाते हैं कि ये सेवाए यहा प्रतीक रूप मे ही चल पा रही है ।

लेकिन पानी का काम ऐसा नही है । प्रकृति से इस क्षेत्र को मिलने वाले पानी को समाज बढ़ा नही सकता । उसका 'वजट' स्थिर है । बस उसी मात्रा से पूरा काम करना है । इसके बाद भी समाज ने इसे कर दिखाया है । ५१५ गावो मे नाडियो, तलाइया की गिनती छोड़ दे, बड़े तालाबो की सख्या २९४ है ।

जिसे नए लोगो ने निराशा का क्षेत्र माना, वहा सीमा के छोर पर, पाकिस्तान से थोड़ा पहले आसूताल यानी आस का ताल हें । जहा तापमान ५० अश छू लेता है, वहा सितलाई यानी शीतल तलाई है ओर जहा बादल सबसे ज्यादा 'धोखा' देते है, वहा बदरासर भी है ।

पानी का सावधानी से सग्रह ओर फिर पूरी किफायत से उसका उपयोग — इस

मृगतृष्णा
घुटलाना
घड़सीसर

स्वभाव को न समझ पाने वाले गजेटियर और जिनका वे प्रतिनिधित्व करते है, उस राज ओर समाज को, उसकी नई सामाजिक सस्थाओ तक को यह क्षेत्र "वीरान, वीभत्स, स्फूर्तिहीन और जीवनहीन" दिखता है ।लेकिन गजेटियर मे यह सब लिख जाने वाला भी जब घड़सीसर पहुचा है तो "वह भूल जाता है कि वह मरुभूमि की यात्रा पर है ।"

कागज मे, पर्यटन के नक्शो मे जितना बड़ा शहर जैसलमेर है, लगभग उतना ही बड़ा तालाब घड़सीसर है । कागज की तरह मरुभूमि मे भी ये एक दूसरे से सटे खड़े है — बिना घड़सीसर के जैसलमेर नही होता । लगभग ८०० बरस पुराने इस शहर के कोई ७०० बरस, उनका एक-एक दिन घड़सीसर की एक-एक बूद से जुड़ा रहा है ।

रेत का एक विशाल टीला सामने खड़ा है । पास पहुचने पर भी समझ नही आएगा कि यह टीला नही, घड़सीसर की ऊची-पूरी, लबी चौड़ी पाल है । जरा और आगे बढ़े तो दो बुर्ज और पत्थर पर सुदर नक्काशी के पाच झरोखो और दो छोटी और एक बड़ी पोल का प्रवेश द्वार सिर उठाए खड़ा दिखेगा । बड़ी और छोटी पोलो के सामने नीला आकाश झलकता है । जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते है, प्रवेश द्वार से दिखने वाली झलक मे नए-नए दृश्य जुड़ते जाते है । यहा तक पहुच कर समझ मे आएगा कि पोल से जो नीला आकाश दिख रहा था, वह तो सामने फैला नीला पानी है । फिर दाई-बाई तरफ सुदर पक्के घाट, मदिर, पटियाल, बारादरी, अनेक स्तभो से सजे बरामदे, कमरे तथा ओर न जाने क्या क्या जुड़ जाता है । हर क्षण बदलने वाले दृश्य पर जब तालाब के पास पहुचकर विराम लगता है, तब आखे सामने दिख रहे सुदर दृश्य पर कही एक जगह टिक नही पाती । पुतलिया हर क्षण घूम-घूम कर उस विचित्र दृश्य को नाप लेना चाहती हे ।

पर आखे इसे नाप नही पाती । तीन मील लबे और कोई एक मील चौड़े आगर वाले इस तालाब का आगोर १२० वर्गमील क्षेत्र मे फैला हुआ है । इसे जैसलमेर के राजा महारावल घड़सी ने विक्रम सवत १३९१ मे यानी सन् १३३५ मे बनाया था । दूसरे राजा तालाब बनवाया करते थे, लेकिन महारावल घड़सी ने तो इसे खुद बनाया था । महारावल रोज ऊचे किले से उतर कर यहा आते और खुदाई, भराई आदि हरेक काम मे खुद जुटे रहते ।

यो यह दौर जैसलमेर राज के लिए भारी उथल पुथल का दौर था । भाटी वश गद्दी की छीनाझपटी के लिए भीतरी कलह, षडयत्र और सघर्ष से गुजर रहा था । मामा अपने भानजे पर घात लगाकर आक्रमण कर रहा था, सगे भाई को देश निकाला दिया जा रहा था तो कही किसी के प्याले मे जहर घोला जा रहा था । राजवश मे आपसी कलह तो थी ही, उधर राज और शहर जैसलमेर भी चाहे जब देशी विदेशी हमलावरो से घिर जाता था और जब-तब पुरुष वीरगति को प्राप्त होते और स्त्रिया जौहर की ज्वाला मे अपने को

स्वाहा कर देती। ऐसे धधकते दौर मे खुद घडसी ने राठौरो की सेना की मदद से जैसलमेर पर अधिकार किया था। इतिहास की किताबो मे घड़सी का काल जय-पराजय, वैभव-पराभव, मौत के घाट और समर सागर जैसे शब्दो से भरा पड़ा है।

तव भी यह सागर वन रहा था। वर्षो की इस योजना पर काम करने के लिए घड़सी ने अपार धीरज और अपार साधन जुटाए थे ओर फिर इसकी सबसे वड़ी कीमत भी चुकाई। पाल वन रही थी महारावल पाल पर खड़े होकर सारा काम देख रहे थे। राज परिवार मे चल रहे भीतरी षडयत्र ने पाल पर खड़े घडसी पर घातक हमला किया। राजा की चिता पर रानी का सती हो जाना उस समय का चलन था। लेकिन रानी विमला सती नही हुई। राजा का सपना रानी ने पूरा किया।

रेत के इस सपने मे दो रग है। नीला रग है पानी का और पीला रग है तीन-चार मील के तालाव की कोई आधी गोलाई मे वने घाट, मदिरो, बुर्ज ओर बारादरी, वरामदो का। लेकिन यह सपना दिन मे दो बार बस केवल एक रग मे रग जाता है। ऊगते और डूबते समय सूरज घड़सीसर मे मन भर पिघला सोना उडेल देता है। मन-भर, यानी माप तौल वाला मन नही, सूरज का मन भर जाए इतना।

लोगो ने भी घड़सीसर मे अपनी-अपनी सामर्थ्य से सोना डाला था। तालाब राजा का था पर प्रजा उसे सवारती, सजाती चली गई। पहले दौर मे बने मदिर, घाट और जलमहल आदि का विस्तार होता गया। जिसे जब भी जो कुछ अच्छा सूझा, उसे उसने घड़सीसर मे न्यौछावर कर दिया। राजा प्रजा की उस जुगलबदी मे एक अद्‌भुत गीत वन गया था घड़सीसर। एक समय घाट पर पाठशालाए भी बनी। इनमे शहर और आसपास के गावो के छात्र आकर रहते थे और वही गुरू से ज्ञान पाते थे। पाल पर एक तरफ छोटी-छोटी रसोइया और कमरे भी है। दरबार मे, कचहरी मे जिनका कोई काम अटकता, वे गावो से आकर यही डेरा जमाते। नीलकठ और गिरधारी के मदिर बने। यज्ञशाला बनी। जमालशाह पीर की चौकी बनी। सव एक घाट पर।

काम-धधे के कारण मरुभूमि छोड़कर देश मे कही और जा बसे परिवारो का मन भी घड़सीसर मे अटका रहता। इसी क्षेत्र से मध्यप्रदेश के जवलपुर मे जाकर रहने लगे सेठ गोविददास के पुरखो ने यहा लौटकर पठसाल पर एक भव्य मदिर बनवाया था। इस प्रसग मे यह भी याद किया जा सकता है कि तालावो की ऐसी परपरा से जुड़े लोग, परिवार यहा से बाहर गए तो वहा भी उन्होने तालाब वनवाए। सेठ गोविददास के पुरखो ने जबलपुर मे भी एक सुदर तालाब अपनी बड़ी बाखर यानी घर के सामने बनवाया था। हनुमानताल नामक इस तालाव मे घड़सीसर की प्रेरणा देखी जा सकती है।

पानी तो शहर भर का यही से जाता था। यो तो दिन भर यहा से पानी भरा जाता लेकिन सुबह ओर शाम तो सेकड़ो पनिहारिना का मेला लगता। यह दृश्य शहर म नल आने से पहले तक रहा हे। सन् १९१९ मे घड़सीसर पर उम्मेदसिहजी महेता की एक गजल ऐसे दृश्यो का वहुत सुदर वर्णन करती हे। 'भादो की कजली , तीज के मेले पर सारा शहर सज धज कर घड़सीसर आ जाता। सिर्फ नीले ओर पीले रग के इस तालाव मे तव प्रकृति के सव रग छिटक जाते।

घड़सीसर से लोगो का प्रेम एकतरफा नही था। लोग घड़सीसर आते ओर घड़सीसर भी लोगो तक जाता था और उनके मन मे वस जाता। दूर सिध मे रहने वाली टीलो नामक गणिका के मन ने सभवत ऐसे ही किसी क्षण मे कुछ निर्णय ले लिए थे।

तालाब पर मदिर, घाट पाट सभी कुछ था। ठाट मे कोई कमी नही थी। फिर भी टीलो को लगा कि इतने सुनहरे सरोवर का एक सुनहरा प्रवेश द्वार भी होना चाहिए। टीलो ने घड़सीसर के पश्चिमी घाट पर प्रवेश द्वार — पोल वनाना तय कर लिया। पत्थर पर बारीक नक्काशी वाले सुदर झरोखो से युक्त विशाल द्वार अभी पूरा हो ही रहा था कि कुछ लोगो ने महारावल के कान भरे, "क्या आप एक गणिका द्वारा वनाए गए प्रवेश द्वार से घड़सीसर मे प्रवेश किया करेगे ?" विवाद शुरू हो गया। उधर द्वार पर काम चलता रहा। एक दिन राजा ने इसे गिराने का फैसला ले लिया। टीलो को खवर लगी। रातो-रात टीलो ने प्रवेश द्वार की सवसे ऊची मजिल मे मदिर वनवा दिया। महारावल ने अपना निर्णय बदला। तव से पूरा शहर इसी सुदर पोल से तालाव मे प्रवेश करता है और इसे आज भी टीलो के नाम से ही याद रखे है।

टीलो की पोल के ठीक सामने तालाव की दूसरी तरफ परकोटेनुमा एक गोल बुर्ज है। तालावो के वाहर तो अमराई, वगीचे आदि होते ही है पर इस बुर्ज मे तालाब के भीतर 'वगीची' बनी है जिसमे लोग गोठ करने, यानी आनद मगल मनाने आते रहते थे। इसी के साथ पूरब मे एक और बड़ा गोल परकोटा है। इसमे तालाब की रक्षा करने वाली फौजी टुकड़ी रहती थी। देशी-विदेशी शत्रुओ से घिरे इस तालाब की सुरक्षा का भी पक्का प्रवध था क्योकि यह पूरे शहर को पानी देता था।

मरुभूमि मे पानी कितना भी कम वरसता हो, घड़सीसर का आगोर अपने मूल रूप मे इतना वड़ा था कि वह वहा वरसने वाली एक एक वूद को समेट कर तालाब को लवालव भर देता था। घड़सीसर के सामने पहाड़ पर बने ऊचे किले पर चढ़ कर देखे या नीचे आगोर मे पैदल घूमे वार-वार समझाए जाने पर भी इस तालाव मे पानी लाने का पूरा प्रवध आसानी से समझ मे नही आता। दूर क्षितिज तक से इसमे पानी आता था। विशाल

भाग के पानी को समेट कर उस तालाब की तरफ मोड़ कर लाने के लिए आठ आठ किलोमीटर लंबी आड़ यानी एक तरह की मेड़बंदी की गई थी। फिर इतनी मात्रा में उन आ रहे पानी की ताकत को तोला गया था और इसकी टक्कर की मार को कम करने के लिए पत्थर की चादर यानी एक और लंबी मजबूत दीवार बनाई गई थी। पानी इस पर टकरा कर अपना सारा वेग तोड़ कर बड़े धीरज के साथ घड़सीसर में प्रवेश करता है। यह चादर न होती तो घड़सीसर का आगर उसके सुंदर घाट — सब कुछ उखड़ सकता है।

फिर इस तरह लबालब भरे घड़सीसर की रखवाली नेष्टा के हाथ आ जाती है। नेष्टा यानी तालाब का वह अंग जहां से उसका अतिरिक्त पानी तालाब की पाल को नुकसान पहुंचाए बिना बाहर बहने लगता है। नेष्टा चलता है और इतने विशाल तालाब को तोड़ सकने वाले अतिरिक्त पानी को बाहर बहाने लगता है। लेकिन यह 'बहाना' भी बहुत विचित्र था। जो लोग एक एक बूंद एकत्र कर घड़सीसर भरना जानते थे, वे उसके अतिरिक्त पानी को भी केवल पानी नहीं, जलराशि मानते थे। नेष्टा से निकला पानी आगे एक और तालाब में जमा कर लिया जाता था। नेष्टा तब भी नहीं रुकता तो इस तालाब का नेष्टा भी चलने लगता। फिर उससे भी एक और तालाब भर जाता। यह सिलसिला — आसानी से भरोसा नहीं होगा — पूरे नौ तालाबों तक चलता रहता। नौताल, गोविंदसर, जोशीसर, गुलाबसर, भाटियासर, सूदासर, मोहतासर रतनसर और फिर किसनघाट। यहां तक पहुंचने पर भी पानी बचता तो किसनघाट के बाद उसे कई बेरियों में, यानी छोटे छोटे कुएंनुमा कुंडों में भर कर रख दिया जाता। पानी की एक एक बूंद जैसे शब्द और वाक्य घड़सीसर से किसनघाट तक के ६ ५ मील लंबे क्षेत्र में अपना ठीक अर्थ पाते थे।

लेकिन आज जिनके हाथ में जैसलमेर है, राज है, वे घड़सीसर का अर्थ ही भूल चले है तो उसके नेष्टा से जुड़े नौ तालाबों की याद उन्हें भला कैसे रहेगी। घड़सीसर के आगोर में वायुसेना का हवाई अड्डा बन गया है। इसलिए आगोर के इस हिस्से का पानी अब तालाब की ओर न आकर कहीं और बह जाता है। नेष्टा और उसके रास्ते में पड़ने वाले नौ तालाबों के आसपास भी बेतरतीब बढ़ते शहर के मकान, नई गृह निर्माण समितियां और तो ओर पानी का ही नया काम करने वाला इंदिरा नहर प्राधिकरण का दफ्तर, उसमें काम करने वालों की कालोनी बन गई है। घाट, पठसाल (पाठशालाएं), रसोई, बारादरी, मंदिर ठीक सार संभाल के अभाव में धीरे-धीरे टूट चले हैं। आज शहर ल्हास का वह खेल भी नहीं खेलता, जिसमें राजा प्रजा सब मिलकर घड़सीसर की सफाई करते थे, साद निकालते थे। तालाब के किनारे स्थापित पत्थर का जलस्तंभ भी थोड़ा सा हिलकर एक

तरफ झुक गया है। रखवाली करने वाली फौज की टुकड़ी के बुर्ज के पत्थर भी ढह गए है।

घाट की बारादरी पर कही-कही कब्जे हो गए है। पाठशालाओ मे, जहा कभी परपरागत ज्ञान का प्रकाश होता था, आज कचरे का ढेर लगा है। जैसलमेर पिछले कुछ वर्षों से विश्व के पर्यटन नक्शे पर आ गया है। ठड के मौसम मे — नवबर से फरवरी तक यहा दुनिया भर के पर्यटक आते है और उनके लिए इतना सुदर तालाब एक बड़ा आकर्षण है। इसीलिए दो वर्ष पहले सरकार का कुछ ध्यान इस तरफ गया था। आगोर से पानी की आवक मे आई कमी को इदिरा गाधी नहर मे पानी लाकर दूर करने की कोशिश भी की गई। बाकायदा उद्घाटन हुआ इस योजना का। पर एक बार की भराई के बाद कही दूर से आ रही पाइप लाइन टूट-फूट गई। फिर उसे सुधारा नही जा सका। घड़सीसर अभी भी भरता है, वर्षा के पानी से।

६६८ बरस पुराना घड़सीसर मरा नही है। बनाने वालो ने उसे समय के थपेड़े सह पाने लायक मजबूती दी थी। रेत की आधियो के बीच अपने तालाबो की उम्दा सार-सभाल की परपरा डालने वालो को शायद इसका अदाज नही था कि अभी उपेक्षा की आधी चलेगी। लेकिन इस आधी को भी घड़सीसर और उसे आज भी चाहने वाले लोग बहुत धीरज के साथ सह रहे है। तालाब पर पहरा देने वाली फौजी टुकड़ी आज भले ही नही हो, लोगो के मन का कुछ पहरा आज भी है। पहली किरन के साथ मदिरो की घटिया बजती हे। दिन-भर लोग घाटो पर आते-जाते है। कुछ लोग यहा घटो मोन बैठे बेठे घड़सीसर को निहारते रहते हे तो कुछ गीत गाते रावणहत्था (एक तरह की सारगी) बजाते हुए मिलते है। घड़सीसर से बहुत दूर रेत के टीले पार करते ऊट वाले इसके ठडे पानी के गुणो को गुनगुनाते मिल जाएगे।

पनिहारिने आज भी घाटो पर आती है। पानी ऊटगाड़ियो से भी जाता हे और दिन मे कई बार ऐसी टैकर गाड़िया भी यहा देखने मिल जाती हैं, जिनमे घड़सीसर से पानी भरने के लिए डीजल पप तक लगा रहता है।

घड़सीसर आज भी पानी दे रहा है। ओर इसीलिए सूरज आज भी ऊगते ओर डूबते समय घड़सीसर मे मन भर सोना उडेल जाता हे।

घड़सीसर मानक बन चुका था। उसके बाद किसी आर तालाब को बनाना बहुत कठिन रहा होगा। पर जेसलमेर मे हर सो-पचास बरस के अतर पर तालाब बनते रहे — एक से एक, मानक घड़सीसर के साथ मोती की तरह गुथे हुए।

घड़सीसर से कोई १७५ बरस बाद बना था जेतसर। यह था तो बधनुमा ही पर अपने बड़े बगीचे के कारण बाद म बस इसे 'बड़ा बाग की तरह ही याद रखा गया।

इस पत्थर के बाध ने जैसलमेर के उत्तर की तरफ खड़ी पहाड़ियो से आने वाला सारा पानी रोक लिया है । एक तरफ जैतसर है और दूसरी तरफ उसी पानी से सिंचित बड़ा बाग। दोनो का विभाजन करती है बाध की दीवार । लेकिन यह दीवार नही, अच्छी खासी चौड़ी सड़क लगती है जो घाटी पार कर सामने की पहाड़ी तक जाती है । दीवार के नीचे बनी सिचाई नाली का नाम है राम नाल । राम नाल नहर बध की तरफ सीढ़ीनुमा है । जैतसर मे पानी का स्तर ज्यादा हो या कम, नहर का सीढ़ीनुमा ढाचा पानी को बड़े बाग की तरफ उतारता रहता है । बड़ा बाग मे पहुचने पर राम नाल राम नाम की तरह कण-कण मे बट जाती है । नहर के पहले छोर पर एक कुआ भी है । पानी सूख जाए, नहर बद हो जाए तो भूमि मे रिसन के पानी से भरे कुए का उपयोग होने लगता है । इस बड़े कुए मे चड़स चलती है । कभी इस पर रहट भी चलती थी । बाग मे छोटे-छोटे कुओ की तो कोई गिनती ही नही है ।

बड़ा बाग सचमुच बहुत हरा और बड़ा है । विशाल ओर ऊची अमराई ओर उसके साथ-साथ तरह तरह के पेड़-पौधे । अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे, वहा भी प्राय नदी के किनारे मिलने वाला अर्जुन का पेड भी बड़ा बाग मे मिल जाएगा । घने बड़ा बाग मे सूरज की किरणे पेड़ो की पत्तियो मे अटकी रहती है, हवा चले, पत्तिया हिले तो मौका पाकर किरणे नीचे छन छन कर टपकती रहती है । बाध के उस पार पहाड़ियो पर राजघराने का श्मशान है । यहा दिवगतो की स्मृति मे असख्य सुदर छतरिया बनी है ।

अमर सागर घड़सीसर से ३२५ साल बाद बना है । किसी और दिशा मे बरसने वाले पानी को रोकना मुख्य कारण रहा ही होगा लेकिन अमर सागर बनाने वाला समाज शायद यह भी जताना चाहता था कि उपयोगी और सुदर तालाबो को बनाते रहने की उसकी इच्छा अमर है । पत्थर के टुकड़ो को जोड़-जोड़ कर कितना बेजोड़ तालाब बन सकता है — अमर सागर इसका अद्भुत उदाहरण है । तालाब की चौड़ाई की एक पाल, भुजा सीधी खड़ी उची दीवार से बनाई गई है । दीवार पर जुड़ी सुदर सीढ़िया झरोखो और बुर्ज मे से होती हुई नीचे तालाब मे उतरती है । इसी दीवार के बड़े सपाट भाग मे अलग-अलग उचाई पर पत्थर के शेर, हाथी-घोड़े बने है । ये सुदर सजी धजी मूर्तिया तालाब का जलस्तर बताती है । पूरे शहर को पता चल जाता है कि पानी कितना आया है और कितने महिनो तक चलेगा ।

अमर सागर का आगोर इतना बड़ा नही हे कि वहा से साल-भर का पानी जमा हो जाए । गर्मी आते-आते यह तालाब सूखने लगता है । इसका अर्थ था कि जैसलमेर के लोग इतने सुदर तालाब को उस मौसम मे भूल जाए, जिसमे पानी की सबसे ज्यादा

जरूरत रहती है। लेकिन जैसलमेर के शिल्पियो ने यहा कुछ ऐसे काम किए जिनसे शिल्प शास्त्र मे कुछ नए पन्ने जुड़ सकते हे। यहा तालाव के तल मे सात सुदर वेरिया वनाई गई। वेरी एक तरह की वावडी पगवाव भी कहलाती है। तालाव का पानी सूख जाता है, लेकिन उसके रिसाव से भूमि का जल स्तर ऊपर उठ जाता है। इसी साफ छने पानी से वेरिया भरी रहती है। वेरिया भी ऐसी वनी है कि अपना जल खा वैठा अमर सागर अपनी सुदरता नही खो देता। सभी वेरियो पर पत्थर के सुन्दर चबूतरे, स्तभ, छतरिया और नीचे उतरने के लिए कलात्मक सीढ़िया है। गर्मी मे, वैसाख मे भी मेला भरता है ओर वरसात मे, भादो मे भी। सूखे अमर सागर मे ये वेरिया किसी महल के टुकड़े जैसी लगती हे ओर जव यह भर जाता हे तो लगता हे तालाव मे छतरीदार वड़ी वडी नावे तेर रही है।

सुदरता का जलस्तर दर्शाती मूर्तिया

जैसलमेर मरुभूमि का एक ऐसा राज रहा है, जिसका व्यापारी दुनिया म डका वजता था। तव यहा सैकड़ो ऊटो के कारवा रोज आते थे। आज के सिध, पाकिस्तान,

अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, अफ्रीका और दूर रूस के कजाकिस्तान, उजवेकिस्तान आदि का माल उतरता था। यहा के माणक चोक पर आज सब्जी भाजी विकती है पर एक जमाना था जव यहा माणिक मोती विकते थे। ऊटो की कतार मभालने वाले कतारिए यहा लाखा का माल उतारते लादते थे। सन् १८०० के प्रारभ तक जेसलमेर ने अपना वैभव नही खोया था। तव यहा की जनसख्या ३५,००० थी। आज यह घट कर आधी रह गई है।

लेकिन वाद मे मदी के दोर मे भी जैसलमेर ओर उसके आसपास तालाव वनाने का काम मदा नही पड़ा। गजरूप सागर, मूल सागर, गगा सागर, डेडासर, गुलाव तालाव और ईसरलालजी का तालाव — एक के वाद एक तालाव वनते चले गए। इस शहर मे तालाव इतने बने कि उनकी पूरी गिनती भी कठिन है। पूरी मान ली गई सूची मे यहा कोई भी चलते फिरते दो चार नाम जोड़ कर हस देता है।

तालावो की यह सुदर कड़ी अग्रेजो के आने तक टूटी नही थी। इस कड़ी की मजवूती सिर्फ राजाओ, रावलो, महारावलो पर नही छोड़ी गई थी। समाज के वे अग भी, जो आज की परिभाषा मे आर्थिक रूप से कमजोर माने जाते हे, तालावो की कड़ी को मजवूत वनाए रखते थे।

मेघा ढोर चराया करता था। यह किस्सा ५०० वरस पहले का है। पशुओ के साथ मेघा भोर सुवह निकल जाता। कोसो तक फैला सपाट तपता रेगिस्तान। मेघा दिन भर का पानी अपने साथ एक कुपड़ी, मिट्टी की चपटी सुराही मे ले जाता। शाम वापस लोटता। एक दिन कुपड़ी मे थोड़ा सा पानी वच गया। मेघा को न जाने क्या सूझा, उसने एक छाटा सा गड्ढा किया, उसमे कुपड़ी का पानी डाला और आक के पत्तो से गड्ढे को अच्छी तरह ढक दिया।

चराई का काम आज यहा, कल कहीं ओर। मेघा दो दिन तक उस जगह पर नही आ सका। वहा वह तीसरे दिन पहुच पाया। उत्सुक हाथो ने आक के पत्ते धीरे से हटाए। गड्ढे मे पानी तो नही था पर ठडी हवा आई। मेघा के मुह से शब्द निकला —'वाफ'। मेघा ने सोचा कि यहा इतनी गरमी मे थोडे से पानी की नमी बची रह सकती है तो फिर यहा तालाब भी बन सकता है।

मेघा ने अकेले ही तालाव बनाना शुरू किया। अब वह रोज अपने साथ कुदाल तगाड़ी भी लाता। दिन भर अकेले मिट्टी खोदता ओर पाल पर डालता। गाए भी वहीं आसपास चरती रहती। भीम जैसी शक्ति नही थी, लेकिन भीम की शक्ति जैसा सकल्प था मेघा के पास। दो वर्ष वह अकेले ही लगा रहा। सपाट रेगिस्तान मे पाल का विशाल घेरा अव दूर से ही दिखने लगा था। पाल की खबर आसपास के गावो को भी

लगी। अब रोज सुबह गावो से वच्चे और दूसरे लोग भी मेघा के साथ आने लगे। सब मिलकर काम करते। १२ साल हो गए थे, अव भी विशाल तालाव पर काम चल रहा था। लेकिन मेघा की उमर पूरी हो गई। पत्नी सती नही हुई। अब तालाब पर मेघा के वदले वह काम करने आती। ६ महीने मे तालाब पूरा हुआ। वाफ यानी भाप के कारण बनना शुरू हुआ था इसलिए इस जगह का नाम भी बाफ पड़ा जो वाद मे विगड़ कर वाप हो गया। चरवाहे मेघा को समाज ने मेघोजी की तरह याद रखा और तालाव की पाल पर ही उनकी सुदर छतरी और उनकी पत्नी की स्मृति मे वही एक देवली वनाई गई।

अकाल तक मे नहीं सूखता जसेरी का जल

वाप बीकानेर-जैसलमेर के रास्ते मे पडने वाला छोटा-सा कस्वा है। चाय ओर कचौरी की ५-७ दुकानो वाला वस अड्डा है। वसो से तिगुनी ऊची पाल अड्डे के वगल मे खड़ी है। गर्मी मे पाल के इस तरफ लू चलती हे उस तरफ मेघोजी के तालाव मे लहरे उठती हे। वरसात के दिनो मे तो तालाव मे लाखेटा (द्वीप) 'लग' जाता हे। तव पानी ४ मील

मे फैल जाता है। मेघ और मेघराज भले ही यहा कम आते हो, लकिन मरुभूमि म मघोजी जैसे लोगो की कमी नही रही।

राजस्थान के तालावो का यह जसढोल जसेरी नाम के एक अद्‌भुत तालाव के विना पूरा नही हो सकता। जैसलमेर से कोई ४० किलोमीटर दूर डेढ़ा गाव के पास वना यह तालाब पानी रोकने की सारी सीमाए तोड़ देता है। चारो तरफ तपता रेगिस्तान हे पर जसेरी का न तो पानी सूखता हे न उसका यश ही। जाल और देशी ववूल के पेड़ा से ढकी पाल पर एक छोटा-सा सुदर घाट ओर फिर तालाव के एक कोने मे पत्थर की सुदर छतरी — कहने लायक कुछ खास नही मिलेगा यहा। पर किसी भी महीने मे यहा जाए, साफ नीले पानी मे लहरे उठती मिलेगी, पक्षियो का मेला मिलेगा। जसेरी का पानी सूखता नही। वडे से बड़े अकाल मे भी जसेरी का यह जस सूखा नही है।

जसेरी तालाव भी हे ओर एक वड़ी विशाल कुई भी। इसके आगर के नीचे कुई की तरह विट्टू रो बल्लियो है, यानी पत्थर की पट्टी चलती है। इसे खोदते समय इस पट्टी का पूरा ध्यान रखा गया। उसे कही से भी टूटने नही दिया गया। इस तरह इसमे पालर पानी और रेजाणी पानी का मेल वन जाता है। पिछली वर्षा का पानी सूखता नही और फिर अगली वर्षा का पानी आ मिलता है — जसेरी हर वरस वरसी वूदो का सगम है।

कहा जाता है कि तालाब के बीच मे एक पगबाव, यानी वावड़ी भी है और उसी के किनारे तालाब को वनाने वाले पालीवाल ब्राह्मण परिवार की ओर से एक ताम्रपत्र लगा है। लेकिन किसी ने इसे पढा नही है क्योकि तालाब मे पानी हमेशा भरा रहता है। वावड़ी तथा ताम्रपत्र देखने, पढ़ने का कोई मोका ही नही मिला है। सभवत जसेरी बनाने वालो ने वहुत सोच समझ कर ताम्रपत्र को तालाव के बीच मे लगाया था — लोग ताम्रपत्र के बदले चादी जैसे चमकीले तालाब को पढते है और इसका जस फैलाते जाते है।

आसपास के एक या दो नही, सात गाव इसका पानी लेते है। कई गावो का पशुधन जसेरी *की सम्पन्नता पर टिका हुआ है। अन्नपूर्णा की तरह लोग* इसका *वर्णन* जलपूर्णा की तरह करते है। और फिर इसके जस की एक सबसे बड़ी बात यह भी वताते हे कि जसेरी मे अथाह पानी के साथ साथ ममता भी भरी है — आज तक इसमे कोई डूबा नही है। कलत (साद) इसमे भी आई है — फिर भी इसकी गहराई इतनी हे कि ऊट पर बैठा सवार डूव जाए — लेकिन आज तक इसमे कोई डूव कर मरा नही है। इसीलिए जसेरी को निर्दोष तालाव भी कहा गया है।

पानी की ऐसी निर्दोष व्यवस्था करने वाला समाज, विदु मे सिधु देखने वाला समाज हेरनहार को हिरान कर देता है।

जल और अन्न का अमरपटो

ज्ञानी ने पूछा "कोन सा तप सबसे बड़ा ह ? ' सीधे सादे ग्वाल ने उत्तर दिया 'आख रो तो तप भलो ।'

आख का तप ही सबसे बड़ा तप है । अपने आसपास के ससार को ठीक ढग से दखने का अनुभव ओर पीढ़ियो के ऐसे अनुभव से बना एक दृष्टिकोण — यह तप इस लोक से उस लोक क जीवन का सरल बनाता हे । आख के इस तप ने जल के साथ-साथ मरुभूमि मे अन्न जुटान की भी अनोखी साधना की । इसका साधन बनी खडीन ।

लूनी नदी जेसे एकाध अपवाद छाड़ द तो मरुभूमि मे अधिकाश नदिया बारहमासी नहीं ह । ये कही से प्रारभ होती ह, बहती है ओर फिर मरुभूमि म ही विलीन हो जाती हे । पर आख के तप ने इनके प्रवाह के पथ को बड़ी बारीकी से देख कर कई ऐस स्थान चुने, जहा इनका पानी रोका जा सकता हे ।
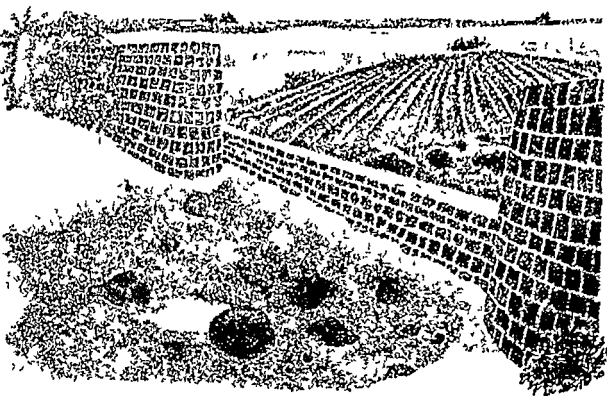
आज भी अन्न भरती है खडीन

ऐसे सब स्थानो पर खडीन बनाई गई। खडीन एक तरह का अस्थाई तालाब है। दो तरफ मिट्टी की पाल उठा कर तीसरी तरफ पत्थर की मजबूत चादर लगाई जाती है। खडीन की पाल धोरा कहलाती है। धोरे की लबाई पानी की आवक के हिसाब से कम ज्यादा होती है। कई खडीन पाच-सात किलोमीटर तक चलती है। वर्षा के दिनो मे चलती नदी खडीन मे बाध ली जाती है। पानी और बहे तो चादर से बाहर निकल कर उसी प्रवाह-पथ पर बनी दूसरी-तीसरी खडीनो को भी भरता चलता है। खडीन मे आराम करती हुई यह नदी धीरे-धीरे सूखती जाती है पर इस तरह वह खडीन की भूमि को नम बनाती जाती है। इस नमी के बल पर खडीनो मे गेहू आदि की फसल बोई जाती है। मरुभूमि मे जितनी वर्षा होती है उस हिसाब से यहा गेहू की फसल लेना सभव ही नही था। पर यहा कई जगहो पर, विशेषकर जेसलमेर मे सैकड़ो वर्षो पहले इतनी खडीन बनाई गई थीं कि इस जिले के एक क्षेत्र का पुराना नाम खडीन ही पड़ गया था।

खडीनो को बनाने का श्रेय पालीवाल ब्राह्मणो को जाता है। कभी पाली की तरफ से यहा आकर बसे पालीवालो ने जैसलमेर के राज को अनाज से भर दिया था। इस भाग मे इनके चौरासी गाव बसे थे। गाव भी एक से एक सुदर और हर तरह से व्यवस्थित।

चौपड़ की तरह दाए-बाए काटती चोड़ी सड़के, सीधे कतारो मे बने पत्थर के सुदर बड़े-बड़े मकानो की बस्ती, और बस्ती के बाहर दस पाच नाडिया, दो चार बड़े तालाब और फिर दूर क्षितिज तक फैली खडीनो मे लहराती फसले — इन गावो मे स्वावलबन इतना सधा था कि अकाल भी यहा के अनाज के ढेर मे दब जाए।

इस स्वावलबन ने इन गावो को घमडी नही बनाया लेकिन स्वाभिमानी इतना बनाया कि राजा के एक मत्री से किसी प्रसग मे विवाद बढ़ने पर पूरे चोरासी गावो का एक बड़ा सम्मेलन हुआ और निर्णय हुआ कि यह राज्य छोड़ देना है। वर्षो के श्रम से बने मकान, तालाब, खडीन, नाडी — सब कुछ ज्यो का त्यो छोड़ पालीवाल एक क्षण मे अपने चोरासी गाव खाली कर गए।

कराई

उसी दौर मे बनी ज्यादातर खडीने आज भी गेहू दे रही है। अच्छी वर्षा हो जाए यानी जैसलमेर मे जितना कम पानी गिरता है, उतना गिर जाए तो खडीन एक मन का पद्रह से बीस मन गेहू वापस देती है। हर खडीन के बाहर पत्थर के बड़े-बड़े रामकोठे बने रहते है। इन्हे कराई कहते है। कराई का व्यास कोई पद्रह हाथ होता है और उचाई दस हाथ। उड़ावनी के बाद अनाज खलियानो मे जाता है और भूसा कराई मे रखा जाता है। एक कराई मे सो मन तक भूसा रखा जा सकता है। यह भूसा सूकला कहलाता है।

तालाबो की तरह खडीनो के भी नाम रखे जाते है और तालाबो के अगो की तरह ही खडीनो के विभिन्न अगो के भी नाम है। धोरा है पाल। धोरा और पत्थर की चादर को जोड़ने वाला मजबूत बध पानी के वेग को तोड़ने के लिए अर्धवृत्ताकार रखा जाता है। इसे पखा कहते है। दो धोरे, दो पखे, एक चादर और अतिरिक्त पानी को बाहर निकालने का नेष्टा भी — सभी कुछ पूरी सावधानी से बनाया जाता था। बारहमासी न सही पर चौमासी यानी बरसाती नदी का वेग भी इतना होता है कि जरा सी असावधानी पूरी खडीन को बहा ले जाए।

बहुत सी खडीने समाज ने बनाई तो कुछ प्रकृति देवी ने भी। मरुभूमि मे प्राकृतिक रूप से कुछ भाग एसे है जहा तीन तरफ से आड़ होने के कारण चोथी तरफ से बह कर आने वाला पानी वही रुक जाता है। इन्हे देवी बध कहते है। यही फिर बोलचाल मे दईबध भी हुआ और किसी एक नियम के कारण इसे 'दईबध जगह' कहने लगे।

खडीन और दईबध जगह चौमासी चलती नदी से भरते है। चलती-बहती नदी यहा वहा मुड़ती भी है। इन मोड़ो पर पानी का तेज बहाव भूमि को काटता है और वहा एक

कुलधरा
जैसलमेर

छोटा डबरा सा बन जाता है। नदी बाद मे सूख जाती है पर इस जगह कुछ समय तक पानी बना रहता है। यह जगह भे कहलाती है। भे का उपयोग बाद म रेजाणी पानी पाने के लिए किया जाता है।

खेतो मे भी कुछ निचले भागो मे कही कही पानी ठहर जाता है। इन्हे डहरी, डहर या डैर कहते ह। डहरियो की सख्या भी सकड़ो म जाती है। इन सब जगहो पर पालर पानी रोका जाता है, फिर उसे रेजाणी मे बदलने का अवसर मिलता है। इसकी मात्रा कम है या ज्यादा — ऐसा रत्ती भर नही सोचा जाता। रजत ताला हो या रत्ती, वह तो तुलता ही है। रजत बूद चार हाथ की डहरी मे आने लायक हो या चार कोस की खडीन मे, उनका तो सग्रह होता ही है। कुई पार, कुड टाक नाडी, तलाई तालाब सरवर, बेर खडीन दईबध जगह डेहरी और भे इन रजत बूदो से भरते है, कुछ समय के लिए सूखने भी ह पर मरते नही।

य सब आख क तप मे लिखे जल और अन्न के अमरपटा अमर लेख ह।

भूण थारा बारे मास

गहरे कुए की जगत पर लगी काठ की घिर्री यानी भूण बारह महीने घूमता है पाताल का पानी ऊपर लाता रहता है। भूण को मरुभूमि मे, बारह महीने काम करने का अवसर है। और इद्र को ? इद्र की तो बस एक घड़ी है।

भूण थारा बारे मास,
इदर थारी एक घड़ी।

यह कहावत इद्र के सम्मान मे है या कि भूण के—ठीक-ठीक कहा नही जा सकता। एक अर्थ है कि इद्र देवता एक घड़ी भर मे, एक बार मे ही इतना पानी बरसा जाते है जितना बेचारा भूण बारह महीने घूम कर दे पाता है तो दूसरा संकेत यह भी है कि मरुभूमि मे देवताओ के देवता इद्र के लिए बस एक घड़ी लिखी है पर भूण तो बारह महीने चलता है।

दो मे से किसी एक को लाचार बताने के वजाए जोर तो इद्र और भूण यानी पालर पानी और पाताल पानी के शाश्वत सबध पर है । एक घड़ी भर बरसा पालर पानी धीरे धीरे रिसते हुए पाताल पानी का रूप लेता है । दोनो रूप सजीव है और बहते है । धरातल पर बहने वाला पालर पानी दिखता हे, पाताल पानी दिखता नही ।

इस न दिख सकने वाले पानी को, भूजल को देख पाने के लिए एक विशिष्ट दृष्टि चाहिए । पाताल मे कही गहरे बहने वाले जल का एक नाम सीर हे ओर सीरवी हे जो उसे 'देख' सके । पाताल पानी को सिर्फ देखने की दृष्टि ही पर्याप्त नही मानी गई, उसके प्रति समाज मे एक विशिष्ट दृष्टिकोण भी रहा है । इस दृष्टिकोण मे पाताल पानी को देखने, ढूढने, निकालने और प्राप्त करने के साथ-साथ एक वार पाकर उसे हमेशा के लिए गवा देने की भयकर भूल से वचने का जतन भी शामिल रहा है ।
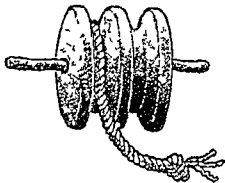
कुए पूरे देश मे बनते रहे है पर राजस्थान के वहुत से हिस्सो मे, विशेषकर मरुभूमि मे कुए का अर्थ है धरातल से सचमुच पाताल मे उतरना । राजस्थान मे जहा वर्षा ज्यादा है वहा पाताल पानी भी कम गहराई पर है और जहा वर्षा कम है वहा उसी अनुपात मे उसकी गहराई बढती जाती है ।

मरुभूमि मे यह गहराई १०० मीटर से १३० मीटर तक, ३०० फुट से ४०० फुट तक है । यहा समाज इस गहराई को अपने हाथो से, वहुत आत्मीय तरीके से नापता है। नाप का मापदड यहा पुरुष या पुरस कहलाता है । एक पुरुष अपने दोनो हाथो को भूमि के समानातर फैला कर खड़ा हो जाए तो उसकी एक हथेली से दूसरी हथेली तक की लवाई पुरुष कहलाती है । यह मोटे तौर पर ५ फुट के आसपास वैठती है । अच्छे गहरे कुए साठ पुरुष उतरते हे । लेकिन इन्हे साठ पुरुष गहरा न कह कर प्यार मे सिर्फ साठी भर कहा जाता हे ।

इतने गहरे कुए एक तो देश के दूसरे भागो मे खोदे नही जाते, उसकी जरूरत ही नही होती, पर खोदना चाहे तो भी वह साधारण तरीके से सभव नही होगा । गहरे कुए खोदते समय उनकी मिट्टी थामना वहुत ही कठिन काम है । राजस्थान मे पानी का काम करने वालो ने इस कठिन काम को सरल वना लिया, सो वात नही है । लेकिन उनने एक कठिन काम को सरलता के साथ करने के तरीके खोज लिए ।

कीणना क्रिया हे खोदने की ओर कीणिया हे कुआ खोदने वाले । मिट्टी का कण कण पहचानते ह कीणिया । सिद्ध दृष्टि वाले सीरवी पाताल का पानी 'देखते' हे ओर फिर
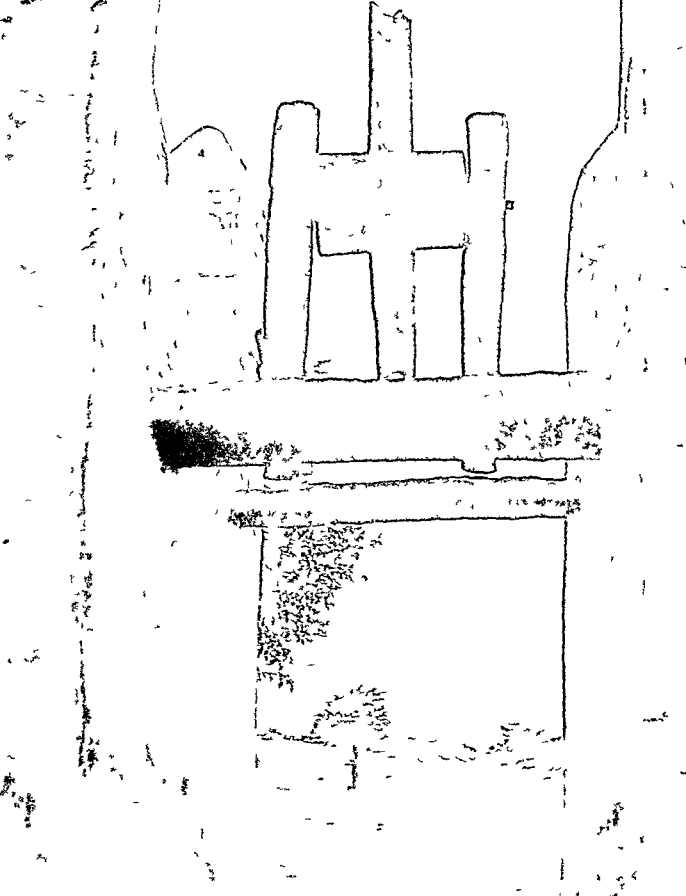
पाव-भाग खोदते हे । इस तरह चार हाथ खोदना हो तो उसे चार चार हाथ के हिस्सो मे खोदते है, चिनते हे और नीचे पाताल पानी तक उतरते जाते हे । वीच मे कभी कभी चट्टान आ जाए तो उसे बारूद लगा कर नही तोड़ा जाता । धमाके के झटके ऊपर की चिनाई को भी कमजोर बना सकते हे । इसलिए चट्टान आने पर उसे धीरज के साथ हाथ से ही तोड़ा जाता है ।

धरातल ओर पाताल को जोडना है पर सावधानी रखनी है कि धरातल पाताल मे धस न जाए — इसलिए इतनी तरह-तरह की चिनाई की जाती हे । गीली चिनाई मे भी साधारण गारे चूने से काम नही चलता । इसमे ईट की राख, बेल का फल, गुड़, सन के वारीक कुतरे गए टुकड़े मिलाए जाते है । कभी कभी घरट, यानी वैल से चलने वाली पत्थर की चक्की से पीसा गया मोटा चूना फिर हाथ की चक्की से भी पीसा जाता है ताकि इतने गहरे ओर वजनी काम को थामे रहने की ताकत उसमे आ जाए ।

पाक खुदाई मे थमता धरातल
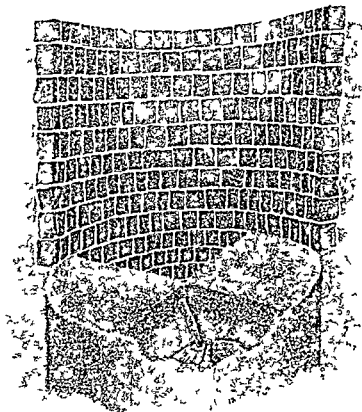
भीतर का सारा काम थमते ही ऊपर धरातल पर काम शुरू होता हे । यहा कुए के ऊपर बस एक जगत बना कर नही रुक जाते । मरुभूमि मे कुओ की जगत पर, उसके ऊपर ओर उसके आसपास जगत भर का काम मिलता है । इसके कई कारण हे । एक तो पानी बहुत गहराई से ऊपर उठाना है । छोटी बाल्टी से तीन सो हाथ का पानी निकाला तो इतने परिश्रम के बाद क्या मिला ? इसलिए बड़े डोल या चडस से पानी खीचा जाता है । इससे एक बार मे आठ-दस बाल्टी पानी बाहर आता है । इतने वजन का डोल खीचने के लिए जो घिर्री, भूण लगेगा वह भी मजबूत चाहिए । उसे जिन खबो के सहारे खड़ा करेगे, उन्हे भी इतना वजन सहने लायक होना चाहिए । फिर इतनी मात्रा मे पानी ऊपर आएगा तो उसे ठीक से खाली करने का कुड, उस कुड मे से वह कर आए पानी का एक ओर वड़े कुड मे सग्रह ताकि वहा से उसे आसानी से लिया जा सके — इस सारी उठापटक

मे थोड़ा बहुत जो पानी जगत पर गिर जाए, उसको भी समेट कर पशुओ के लिए सुरक्षित करने का प्रवध — सब कुछ करते करते इन कुओ पर इतना कुछ वन जाता कि वे कुए न रह कर कभी-कभी तो छोटे छोटे भवन, विद्यालय ओर कभी तो महल जैसे लगने लगते।

पानी पाताल से उठा कर लाना हो तो कई चीजो की सहायता चाहिए। इस विशाल प्रवध का छोटे से छोटा अग महत्वपूर्ण है, उसके विना वड़े अग भी काम नही देगे—हर चीज काम की है इसलिए नाम की भी है।

सबसे पहले तो भूजल के नाम देखे। पाताल पानी तो एक नाम हे ही, फिर सेवो, सेजो, सोता, वाकल पानी, वालियो, भुईजल भी है। तलसीर और केवल सीर भी है। भूजल के अलावा सीर के दो ओर अर्थ है। एक अर्थ है मीठा और दूसरा हे कमाई का नित्य साधन। एक तरह से ये दोनो अर्थ भी कुए के जल के साथ जुड़ जाते हे। नित्य साधन कमाई की तरह कुआ भी नित्य जल देता हे पर तेवड़ यानी किफायत, मितव्ययिता या ठीक प्रवध के विना यह कमाई पुसाती नही है।

फिर इस भवकूप मे, ससार रूपी कुए मे कई तरह के कुए हे। द्रह, दहड़ और दैड़ कच्चे, बिना बधे कुए के नाम हे। ब और व के अतर से बेरा, वेरा, बेरी, वेरी है। कूडो, कूप और एक नाम पाहुर भी है। कहते है किसी पाहुर वश ने एक समय इतने कुए बनवाए थे कि उस हिस्से मे बहुत लबे समय तक कुए का एक नाम पाहुर ही पड़ गया था। कोसीटो या कोइटो थोडा कम गहरा कुआ है तो कोहर नाम है ज्यादा गहरे कुए का। बहुत से क्षेत्रो मे भूजल खूव गहरा है इसलिए गहरे कुओ के नाम भी खूव है जैसे पाखातल, भवर कुआ भमलियो, पाताल कुआ और खारी कुआ। वैरागर चौड़े कुए का नाम है, तो चोतीना उस कुए का जिस पर चार चड़सो द्वारा चारो दिशाओ से एक साथ पानी निकाला जाता है। चौतीना का एक नाम चोकरणो भी रहा है। फिर बावड़ी, पगबाव या झालरा है सीढ़ीदार ऐसे कुए, जिनमे पानी तक सहज ही उतरा जा सकता है। ओर केवल पशुओ को पानी पिलाने के लिए वने कुओ का नाम पीचको या पेजको है।

गहरे कुओ मे बड़े डोल या चड़स का उपयोग होता है। एक साधारण घड़े मे कोई २० लीटर पानी आता है। डोल दो तीन घडे बराबर पानी लाता है। चड़स, कोस या मोट सात घड़े की होती है। इसका एक नाम पुर और गाजर भी है। इन सबमे खूव मात्रा मे पानी भरता है और इसलिए इस वजनी काम को करने इसे दो तीन सौ हाथ ऊपर खीचने, और फिर खाली करने मे कई तरह के साधन ओर उतनी ही तरह की सावधानी की जरूरत रहती हे।

चड़स खिचती हे बेलजोड़ी या एक ऊट से। उन्हे भी इतना भार खीच कर ऊपर
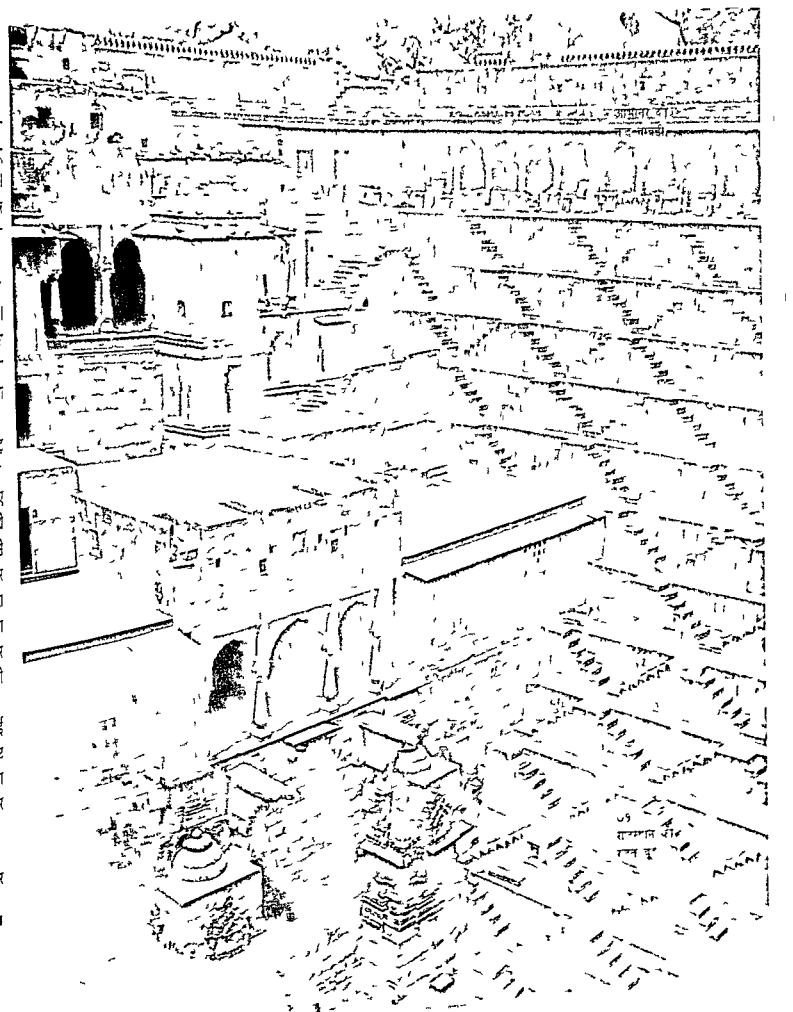
लाने मे ज्यादा श्रम न लगाना पड़े, इसलिए ऐसे कुओ के साथ सारण बनती है। सारण है एक ढलवा रास्ता, जिस पर बैल चडस को खीचते समय चलते है। सारण की ढाल के कारण ही उनका कठिन काम कुछ आसान बनता हे। सारण का एक अर्थ काम निभाने या वनाने वाला भी है और सारण सचमुच गहरे कुए से पानी खीचने का काम निभाती है।

कुआ जितना गहरा हे उतनी ही लबी सारण रखे तो फिर जगह वहुत चाहिए। फिर जो बैल जोड़ी सारण के एक छोर से चलेगी, वह इस लबी सारण के दूसरे ढलवा छोर पर जाकर बहुत धीरे-धीरे ऊपर चढ़ेगी, दुवारा पानी खीचने मे इस तरह काफी समय लगेगा। इसलिए सारण की कुल लवाई कुए की कुल गहराई से आधी रखी जाती है और वैलो की एक जोड़ी के बदले दो जोड़ियो से काम लेकर चड़स को खीचा जाता है।
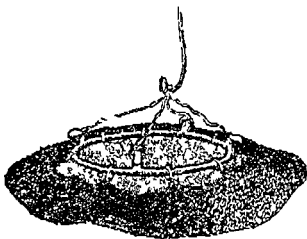
तीन सौ हाथ गहरे कुए मे चड़स के भरते ही पहली जोड़ी ढलवा सारण पर डेढ़ सौ हाथ उतर कर चड़स को कुए मे आधी दूरी तक खीच लाती है। तभी उस रस्सी को बड़ी चतुराई से क्षण भर मे दूसरी जोड़ी से जोड़ दिया जाता है और उधर पहली जोड़ी को खोल कर रस्सी से अलग हटा कर चढ़ाई पर हाक कर ऊपर लाया जाता है। इधर दूसरी जोड़ी बचे डेढ़ सो हाथ की दूरी तक चड़स खीच लाती है। चड़स भलभला कर खाली होती है — पाताल का पानी धरातल पर वहने लगता है।

एक बार की यह पूरी क्रिया बारी या वारो कहलाती है। इस काम को करने वाले वारियो कहलाते हे। इतनी वजनी चड़स को कुए के ऊपर खाली करने के काम मे वल और वुद्धि दोनो चाहिए। जब भरी चड़स ऊपर आकर थमती है तो उसे हाथ से नही पकड़ सकते — ऐसा करने मे वारियो भरी वजनी चड़स के साथ कुए मे भीतर खीच लिया जा सकता हे। इसलिए पहले चड़स को धक्का देकर उलटी तरफ धकेला जाता हे। वजन के कारण वह दुगने वेग से फिर वापस लोटती हे और जगत तक आ जाती है तव झपट कर उसे खाली कर लिया जाता हे।

वारियो के इस कठिन काम का समाज मे एक समय वहुत सम्मान था। गाव मे वरात आती थी तो पगत मे वारियो को सवसे पहले आदर के साथ विठाकर भोजन कराया जाता था। वारियो का एक सवोधन चड़सिया यानी चड़स खाली करने वाला भी रहा है।

वारियो का जोड़ीदार है खाभी, खाभीड़ो । खाभी सारण मे बैलो को हाकता है । आधी दूरी पार करने पर खाभीड़ो चड़स की रस्सी को एक विशेष कील के सहारे पहली जोड़ी से खोल कर दूसरी जोडी स बाधता है । इसलिए खाभीड़ो का एक नाम कीलियो भी हे ।

बैलजोड़ी और चडस को जोडने वाली लबी और मजबूत रस्सी लाव कहलाती है । यह रस्सी घास, या रेशो से नही बल्कि चमड़े स बनती है । घास या रेशो से बनी रस्सी इतनी मजबूत नही हो सकती कि दो मन चड़स दिन भर ढोती रहे । फिर बार बार पानी मे डूबते उतरते रहने के कारण वह जल्दी सड़ भी सकती हे । इसलिए चड़स की रस्सी चमड़े की लबी लबी पट्टियो को बट कर बनाई जाती है । उपयोग के बाद इसे किसी ऐसी जगह टाग कर रखा जाता हे, जहा चूहे न कुतर सके । ठीक सभाल कर रखी गई लाव पन्द्रह बीस बरस तक पानी खीचती रहती है ।
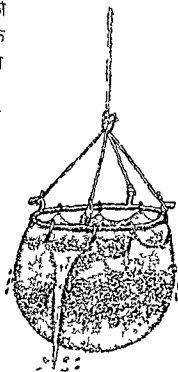
लाव का एक नाम बरत भी है । बरत मे भेस का चमडा काम आता हे । मरुभूमि मे गाय बैल और ऊट ज्यादा है । भेस का तो यह क्षेत्र था नही । पर इस काम के लिए पजाब से भेस का चमड़ा यहा आता था ओर जोधपुर फलोदी, बीकानेर आदि मे उसके लिए अलग बाजार हुआ करता था । कही कही चड़स के बदले कोस काम आता था । उसे बेल या ऊट की खाल से बनाया जाता था ।

कम गहरे लेकिन खूब पानी देने वाले कुए मे चडम, या कोस के बदले सूडिया से पानी निकाला जाता है । सूडिया भी है तो एक तरह की चडस ही पर यह कुए से ऊपर आते ही अपने आप खाली हो जाती हे । सूडिया का आकार ऊपर स तो चड़स जैसा ही रहता है पर नीचे इसमे हाथी की सूड जैसी एक नाली बनी रहती है । इसमे दो रस्मिया लगती हे । ऊपर मुख्य वजन खीचने वाली चमड़े की रस्सी यानी बरत रहती ह आर फिर एक हल्की रस्सी सूड के मुह पर बाधी जाती है । कुए के भीतर जात समय सूड का मुह मुड़ कर बद हो जाता हे । पानी भर जाने के बाद ऊपर आते समय भी यह बद रहना है पर जगत पर आते ही यह खुल जाता हे ओर सूडिया का पानी क्षण भर म खाली हा जाता हे ।

सूडिया वाले कुए पर एक नही, दो चरखी लगती हे । ऊपर की चरखी तो भूण ह फिर भूण से चार हाथ नीचे सूडिया की सूड को खोलने वाली एक ओर घिर्री लगती ह । यह गिड़गिड़ी कहलाती हे । भूण को तो सारा वजन ढोना ह इमलिए उसका आकार पहिए

सूड़िया
चड़स

जैसा रखा जाता है पर गिड़गिड़ी को हल्का काम करना है इसलिए वह वेलन जैसे आकार की वनती है ।

नाम ओर काम की सूची समाप्त नही होती है । सूडिया का मुख्य गोल मुह जिस लोहे के तार या ववूल की लकडी के घेरे मे कसा जाता हे वह है पजर । पजर ओर चमडे को वाधते है कसण । मुह को खुला रखने लकडी का जो चोखट लगता है उसे कहते हैं कलतरू । कलतरू को मुख्य रस्सी यानी वरत से जोडने के लिए एक और रस्सी वधती है, उसका नाम है तोकड़ । लाव के एक छोर पर यह वधी है, तो दूसरे छोर पर खड़ी है वेलजोडी । जोड़ी के कधो पर चडस खीचने जुआनुमा जो वधा है, उसका नाम है पिजरो । इसी पिजरो मे दोनो वैलो की गर्दन अटकाई जाती है । पिजरो मे चार तरह की लकड़िया ठुकती हे और चारो के नाम अलग-अलग है । ऊपर लवाई मे लगने वाली वजनी लकड़ी कोकरा है, नीचे की हल्की लकड़ी फट कहलाती हे । चोड़ाई मे लगने वाली पहली दो पट्टियो का नाम गाटा हे तो भीतर की दो का नाम धूसर ।

य सारे नाम ओर काम कुछ जगहो पर कुछ कुओ पर विजली और डीजल के पपो के कारण कुछ धुधले पड़ने लगे हे । इन नए पपो मे चड़स कोस की तेवड़ यानी मितव्ययिता नही हे । वहुत से साठी, चातीनो कुए आज वैलो के वदले 'घोड़ो से यानी हार्स पावर से पहचाने जाने वाले पपो से पानी उलीच रहे है । पिछले दौर मे कई नई पुरानी वस्तियो मे नए नल लग गए हे । पर उनमे पानी ऐसे ही पुराने साठी या चौतीनो कुओ पर लगे पप स फेका जाता है । नए से दिख रहे नलो मे भी राजस्थान की जल परपरा की धारा वहती हे । कही यह धारा टूटी भी हे । इसका सवसे दुखद उदाहरण जोधपुर जिले के फलादी शहर मे सेठ सागीदासजी के साठी कुए का है । कुआ क्या वह तो वास्तुकला की गहराई-ऊचाई नाप ले ।
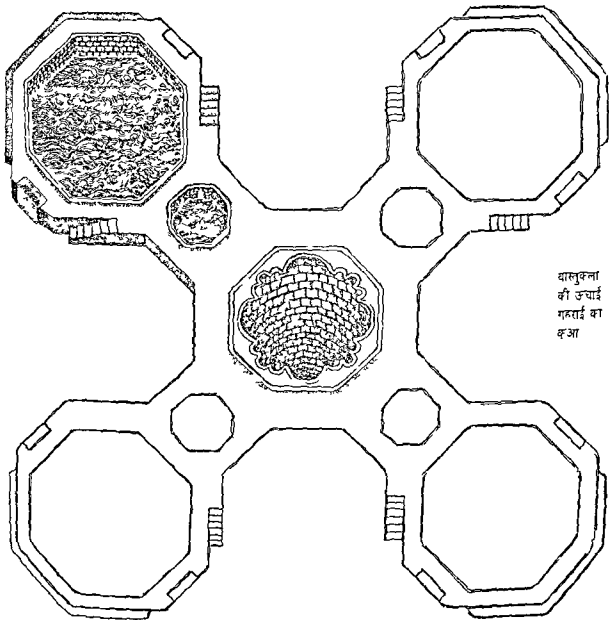
वास्तुकला की उचाई गहराई का कुआ

पत्थर का सुदर अष्टकोणी बड़ा कुआ, आठ मे से चार भुजाओ का विस्तार लबे चबूतरो के रूप म चारो दिशाओ मे बाहर निकलता है। फिर हरेक चबूतरे पर चार छोटे अष्टकोणी कोठे और फिर उनसे जुड़े चार और बड़े गहरे कोठे। हरेक कोठे के साथ बाहर की तरफ हर ऊचाई के पशुओ के लिए पानी पीने की सुविधा देने वाली सुदर खेलिया। चारो चबूतरो के बीच से निकलती चार सारणे, जिन पर एक ही बार मे चारो दिशाओ म चार बैलजोड़िया कोस से पानी निकालने की होड़ करती थी।
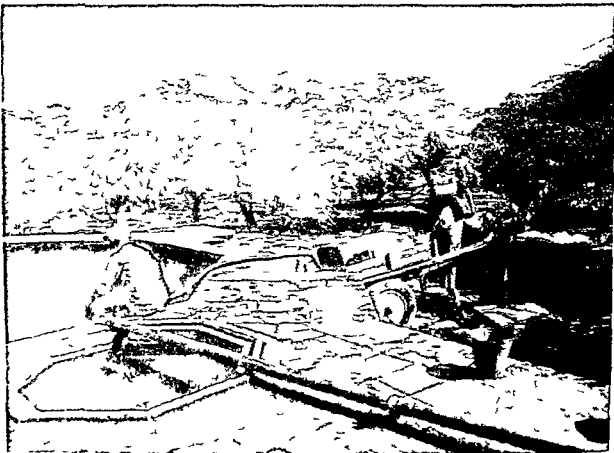
उन्नीसवीं सदी के इस साठी कुए ने बीसवीं सदी भी आधी पार कर ली थी। फिर सन् १९५६ में यह मागीदासजी के परिवार के हाथ से नगरपालिका के हाथ मे आ गया। चार सारणों पर बैलजोड़ियों का दौड़ना थम गया। सुंदर कुए के ठीक ऊपर एक बेहद भद्दा कमरा बनाया गया, बिजली लगी और कुए में तीन सौ पांच फुट की गहराई पर पंद्रह हॉर्स पावर का एक पंप बिठा दिया गया। पानी अथाह था। यदि चौबीस घंटे शहर में बिजली रहे तो वह दिन रात चलता था और हर घंटे हजार गैलन पानी ऊपर फेंकता था। फिर पंप की मोटर को पंद्रह से बढ़ा कर पच्चीस हॉर्स पावर में बदला गया। साफ सफाई होना बंद हो गया, बस पानी खींचते चले गए। पानी कुछ कम होता दिखा, कुए ने संकेत दिया कि काम तो पूरा ले रहे हो पर सार संभाल भूल गए हो। नगरपालिका ने संकेत का अर्थ कुछ और ढंग से लिया। सत्तर फुट की बोरिंग और कर दी। तीन सौ पांच गहरे कुए में सत्तर फुट और जुड़ गए। लेकिन सन् ९० तक आते-आते कुआं थक गया। फिर भी थके मांदे कुए ने और चार साल तक शहर की सेवा की। मार्च १९९४

मे सठ सागीदासजी का कुआ जवाव दे गया ।

पानी इसमे आज भी हे पर सफाई के अभाव मे सोते पुर गए है । सफाई के लिए इतने नीचे कान उतरे ? जिस शहर मे इतना गहरा कुआ खोदने वाले कीणिया मिलते थे, उसे पत्थर से वाधने वाले गजधर मिलते थे, आज वहा नगरपालिका उसे साफ करने वाला को ढ़ढ नही पा रही है ।

लेकिन बीकानेर शहर म १८वी सदी मे बना भव्य चोतीना कुआ आज भी न सिर्फ मीठा पानी दे रहा है, इसी 'कुए' मे नगरपालिका का दफ्तर चल रहा हे, आसपास के मोहल्लो के विजली पानी के विल जमा होते हे ओर जल विभाग के कर्मचारियो की यूनियन का भी काम चलता है । पहले कभी चार सारणा पर आठ बनजोड़िया पानी खीचती थी । अव यहा भी विजली के वड़े वड़े पप लगे है, दिन रात पानी उलीचते हे, पर चौतीना की थाह नही ले पाते । हर समय बीस पच्चीस साइकिले, स्कूटर और मोटर गाडिया कुए पर खड़ी मिलती हे । इन सवको अपने विशाल हृदय मे समेटता यह कुआ कही से भी, दूर से या विलकुल पास से भी कुआ नही, किसी छोटे सुदर रेलवे स्टेशन, वस स्टेड या छोटे महल की तरह दिखता हे ।

चौतीना कुआ बीकानेर

ओर वहा एक नही, अनेक कुए हे, सिर्फ वही नही, हर कही ऐसे कुए है, कुई, कुड और टाके हे । तालाब हे, वावड़ी, पगवाव हे, नाडिया हे, खडीन, देईबध जगह हे, भे है, जिनमे रजत वूदे सहेज कर रखी जाती हे । माटी, जल ओर ताप की तपस्या करन वाला यह देस बहते ओर ठहरे पानी को निर्मल बना कर रखता है, पालर पानी, रेजाणी पानी और पाताल पानी की एक एक विंदु को सिधु समान मानता हे ओर इद्र की एक घड़ी को अपने लिए वारह मास मे वदलता हे ।
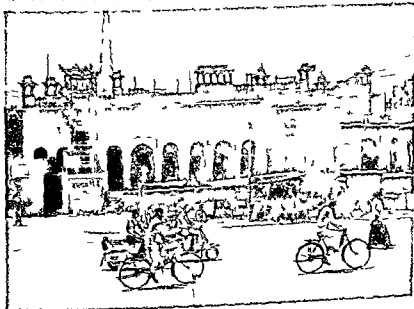
कभी क्षितिज तक लहराने वाला अखड समुद्र हाकड़ो यहा आज भी खड खड होकर उतरता हे ।

अपने तन, मन, धन के साधन

राजस्थान में, विशेषकर मरुभूमि में समाज ने पानी के काम को एक काम की तरह नहीं एक पुनीत कर्तव्य की तरह लिया और इसलिए आज जिसे नागरिक-अभियांत्रिकी आदि कहा जाता है, उससे कहीं ऊपर उठ कर वह एक समग्र जल-दर्शन का सुंदर रूप ले सका।

इस जल दर्शन को समझने की हमारी यात्रा अनायास ही प्रारंभ हुई थी सन् १९८७ में। बीकानेर के गांव भीनासर में वहां की गोचर भूमि को बचाने का आंदोलन चल रहा था। इस संकट में गांव का साथ देने के लिए हम लोग वहां पहुंचे थे।

भीनासर गांव की गोचर भूमि के साथ एक छोटा सा सुंदर मंदिर और बगीची है। बगीची के एक कोने में साफ सुथरा लिपा पुता आंगन था। उसके चारों तरफ कोई एक हाथ ऊंची दीवार थी। कोने में एक छतरी सी बनी थी। लकड़ी के एक ढक्कन से ढकी। ढक्कन के साथ रस्सी बंधी हुई एक बाल्टी रखी थी। यह क्या है? पूछने पर बताया गया कि इसे टांका कहते हैं। यह वर्षा के पानी का संग्रह करता है। आंगन के बाहर

उतरवा कर हमे भीतर ले जाया गया। ढक्कन खोल कर देखा तो पता चला कि भीतर बहुत बड़े कुड मे पानी भरा है।

राजस्थान मे जल सग्रह की विशाल परपरा का यह पहला दर्शन था। वाद की यात्राओ मे जहा भी गए, वहा इस परपरा को और अधिक समझने का सौभाग्य मिला। तव तक राजस्थान के वारे मे यही पढ़ा सुना था कि पानी का वहा घोर अकाल है, समाज बहुत कष्ट मे जीता हे। लेकिन जल सग्रह के ऐसे कुछ कामो को देखकर राजस्थान की एक भिन्न छवि उभरने लगी थी। जल सग्रह के इन अद्‌भुत तरीको के कुछ चित्र भी खीचे थे।

तव तक जो कुछ भी छिटपुट जानकारी एकत्र हुई थी, उसे वहुत सकोच के साथ एकाध वार राजस्थान की कुछ सामाजिक सस्थाओ के वीच भी रखा। तव लगा कि उस क्षेत्र मे काम कर रही सामाजिक सस्थाए अपने ही समाज के इस कौशल से उतनी ही कटी हुई है जितने कि राजस्थान के वाहर के हम लोग। सकोच कुछ कम हुआ ओर फिर जव भी, जहा भी अवसर मिला, इस अधूरी सी जानकारी को यहा वहा पहुचाना शुरू किया।

हर समय की गरट

इस काम का विस्तार ओर गहराई — दोनो को समझ पाना हमारे बूते से वाहर की वात थी। राजस्थान भर मे जगह-जगह उपस्थित यह काम नई पढ़ाई लिखाई मे, पुस्तको, पुस्तकालयो मे लगभग अनुपस्थित ही रहा हे। राजस्थान की आई-गई सरकारो ने, और तो ओर नई सामाजिक सस्थाओ तक ने भी अपने ही समाज के इस विस्तृत काम को जैसे विस्मृत ही कर दिया था। बस वची है इस काम की पहचान लोगो की स्मृति मे। वे ही इस स्मृति को ठीक श्रुति की तरह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौपते आ रहे है। इस स्मृति, श्रुति और कृति को हम बहुत ही धीरे-धीरे बूद बूद ही समझ सके। कुछ अग प्रत्यग तो दिखने लगे थे, मोटी-मोटी वाते समझ मे आने लगी थी, लेकिन इस काम की आत्मा का दर्शन तो हमे आठ नौ बरस बाद जैसलमेर की यात्राओ से, वहा श्री भगवानदास माहेश्वरी, श्री दीनदयाल ओझा और श्री जेठूसिह भाटी के सत्सग से हो सका।

पानी के प्रसग मे राजस्थान के समाज ने वर्षो की साधना से, अपने ही साधनो से जो गहराई-ऊचाई छुई है, उसकी ठीक-ठीक जानकारी खूव वर्षा के वाद भी प्यासे रह जा रहे देश के कई भागो तक तो पहुचनी ही चाहिए। साथ ही यह भी लगा कि दुनिया के

अन्य मरुप्रदेशो मे इस काम की प्रासगिकता है । इसी सिलसिले म एशिया आर अफ्रीका के मरुप्रदेशो की थोड़ी वहुत जानकारी एकत्र की, कुछ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सपर्क भी किया।

आज दुनिया क कोई सो देशो म मरुभूमि का विस्तार हे । इनम अमरिका, रूम आर आस्ट्रेलिया जेसे अमीर माने गए देश छाड़ द । आर चाह तो इस सूची म पेट्रोल के कारण हाल ही मे अमीर वन गए खाड़ी के देश ओर इजरायल भी अलग कर ले । ता भी एशिया, अफ्रीका ओर दक्षिण अमेरिका के कई ऐस देश है जहा मरुप्रदशो मे पानी का, पीने क पानी का घोर सकट छाया हे । सहसा यह विश्वास नही होता कि वहा के समाज ने वर्षो से वहा रहते हुए पानी का ऐसा उम्दा काम नही किया होगा जेसा राजस्थान म हो पाया था। वहा के जानकार लोग ओर सस्थाए ता यही वताती हे कि उन जगहो पर कोई व्यवस्थित परपरा नही है । रही होगी ता गुलामी के लवे दोर मे छिन्न भिन्न हो गई होगी ।

इन देशो मे मरुभूमि के विस्तार को राकने के लिए सयुक्त राष्ट्र सघ क पर्यावरण कार्यक्रम की एक विराट अतराष्ट्रीय योजना चल रही ह । इसके अलावा अमेरिका केनडा, स्वीडन, नार्वे, हालड की दान-अनुदान देने वाली काई आधा दर्जन सस्थाए कुछ अरव रुपए इन देशो मे पीने का पानी जुटाने मे खच कर रही ह । ये तमाम अरवपति सस्थाए अपने-अपने देशो से अपने विचार, अपने यत्र, साधन, निर्माण सामग्री, विशेषज्ञ, तकनीकी लोग ओर तो आर प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता तक इन देशो मे लगा रही ह । पानी जुटाने के ऐसे सभी अतर्राष्ट्रीय प्रयत्नो का एक विचित्र नमूना वन गया हे वोत्सवाना देश ।

मरुप्रदेशो के इस चित्र की तुलना करे
राजस्थान से, जहा समाज ने कुछ सैकडो
वर्षो से पानी की रजत बूदो को
जगह जगह समेटकर, सहेजकर रखने की
एक परपरा बनाई है और इस परपरा ने
कुछ लाख कुडिया, कुछ लाख टाके,
कुछ हजार कुईया
और कुछ हजार छोटे-बडे तालाब बनाए है।
इसके लिए उसने
किसी के आगे कभी हाथ नही पसारा

वोत्सवाना अफ्रीका के मरु प्रदेश मे वसा एक गणराज्य हे । क्षेत्रफल हे ५,६१,८०० वर्ग किलो मीटर ओर जनसख्या है ८,७० ००० । तुलना कीजिए राजस्थान से जिसका क्षेत्रफल एक वार फिर दुहरा ले ३,४२,००० वर्ग किलोमीटर यानी वोत्सवाना से काफी कम, पर जनसख्या हे लगभग ४ करोड़, वोत्सवाना की जनसख्या से पचास गुना ज्यादा । वोत्सवाना का लगभग ८० प्रतिशत भाग कालाहारी नामक रेगिस्तान मे आता हे ।

राजस्थान की मरुभूमि के मुकाबले यहा वर्षा की स्थिति कुछ अच्छी ही कहलाएगी।
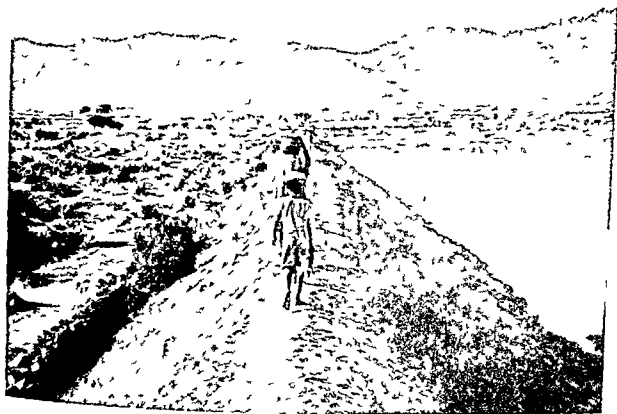
यहा का वार्षिक ओसत ४५ सेटीमीटर है। कालाहारी मरुस्थल मे यह थोडा कम होकर भी ३० सेटीमीटर है। एक बार फिर दुहरा ले कि थार के रेगिस्तान मे यह १६ सेटीमीटर से २५ सेटीमीटर है। तापमान के मामले मे भी कालाहारी क्षेत्र थार से बेहतर ही माना जाएगा। अधिकतम तापमान ३० डिग्री से ज्यादा नही जाता। थार मे यह ५० डिग्री छू लेता है।

यानी बोत्सवाना मे जगह ज्यादा, लोग कम, वर्षा थोड़ी-सी ज्यादा और तापमान कम — बोत्सवाना के समाज को राजस्थान के समाज से अपेक्षाकृत कुछ उदार परिस्थिति मिली। लेकिन आज पानी का यहा बड़ा सकट है। पहले कभी कोई ऊची परपरा रही होगी ता आज उसके चिन्ह भी नही मिलते। यो किन्ही दो समाजो की तुलना करना बहुत अच्छा काम नही है फिर भी जो जानकारी उपलब्ध है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि बोत्सवाना मे जल अधिक होते हुए भी उसके सग्रह की समयसिद्ध, स्वयसिद्ध परपरा नही दिख पाती।

बोत्सवाना की ८५ प्रतिशत आबादी, राजस्थान की तरह ही गावो मे बसती है। लेकिन यहा एक अतर है और यह अतर जल के अभाव के कारण है। गाव की आबादी वर्ष भर एक घर मे नही बल्कि तीन घरो मे घूमती है। एक घर गाव मे, दूसरा चरागाह मे और तीसरा घर 'गोशाला' मे। जुलाई से सितम्बर तक लोग गाव के घर मे रहते हैं। अक्तूबर से जनवरी तक चरागाहो मे और फिर फरवरी से जून तक गोशाला मे।

यहा राजस्थान की तरह कुडी, कुइया, टाको आदि का चलन कम से कम आज देखने मे नही आता। बस ज्यादातर पानी कुओ से और वर्षा के मोसम मे निचले क्षेत्र मे एकत्र हुए प्राकृतिक तालाबो से मिलता है।

उपलब्ध जानकारी के अनुसार पता चलता है कि यहा पहली बार सन् १९७५ स ८१ के बीच कैनेडा स्थित एक अनुदान सस्थान के सहयोग से जल सग्रह की कुडीनुमा पद्धति का प्रयोग प्रारभ हुआ था। इसमे सरकार के बड़े-बड़े अधिकारी, विदेशी इजीनियर, जल विशेषज्ञ यहा के कुछ गावो मे घूमे और उन्होने खलियानो मे अनाज सुखाने के लिए बनाए जाने वाले आगन मे थोड़ा-सा ढाल देकर एक कोने मे गड्ढा कर उसमे वर्षा के जल का कुछ सग्रह किया है। शत प्रतिशत विदेशी सहयोग से, कहीं बहुत दूर से लाई गई सामग्री से ऐसी दस 'कुडिया' बनाई गई है। हरेक का, हर तरह का हिसाब किताब रखा जा रहा है, लागत-लाभ के बारीक अध्ययन हो रहे है। ये सभी 'कुडिया' गोल न होकर चौकोर बनी है। चौकोर गड्ढे मे भूमि का दबाव चारो तरफ से पडता है, इसलिए उसके टूटने की आशका बनी रहती है। गोल आकार के बदले चौकोर आकार मे चिनाई का क्षेत्रफल अधिक होता है– भले ही सग्रह की क्षमता उतनी ही हो। इसलिए अब ये विशेषज्ञ स्वीकार कर रहे हैं कि भविष्य मे कुडी का आकार चौकोर की बजाय गोल ही बनाना चाहिए।

इन प्रयोगात्मक कुडियो की सार-सभाल के लिए गाव वालो को, उपयोग करने वाले परिवारो को 'उन्ही की भाषा मे' प्रशिक्षित किया जा रहा है। कुडी मे पानी के साथ रेत न जाए– इसके भी प्रयोग चल रहे हे। एक खास किस्म की छलनी लगाई जा रही है। पर विशेषज्ञो का कहना है कि इसके साथ एक ही दिक्कत है– इसे हर वर्ष बदलना पड़ेगा। इन कुडियो के मुह पर बिठाए गए सीमेंट के ढक्कनो मे भी दरारे पड़ गई हैं। इसलिए अब इनके बदले गोल गुबदनुमा ढक्कनो को लगाने की सिफारिश की गई है।

इसी तरह इथोपिया मे दुनिया भर की कोई पाच सस्थाए पानी के मामले मे समस्याग्रस्त गावो मे छोटे कुए खोदने मे लगी हैं। इन क्षेत्रो मे भूजल कोई बहुत गहरा नही है। ये सब कुए बीस मीटर से ज्यादा गहरे नही है। फिर भी इन विशेषज्ञो के सामने 'सबसे बड़ी

समस्या' है ऐसे कुओ की ठीक चिनाई । मिट्टी धसक जाती है । तुलना कीजिए राजस्थान के उन साठी कुओ से जो साठ मीटर मे भी ज्यादा गहरे जाते है और जिनकी चिनाई के सीधे, उलटे और फाक तरीके न जाने कब से काम मे आते रहे है ।

इथोपिया मे इन कुओ के अलावा हैडपप भी खूब लगे हैं । अच्छे हैडपप सीधे अमेरिका, इग्लेड आदि से आते है । एक अच्छे हैडपप की कीमत पड़ती है कोई ३६,००० से ४०,००० रुपए तक । बताया जाता है कि ये खूब मजबूत हे, बार-बार बिगड़ते नही, टूट-फूट कम

होती है । लेकिन सरकार के पास सभी गावो मे इतने महगे पप बिठाने के लिए उधार का पैसा भी कम पड़ता है । इसलिए कुछ सस्ते हैडपपो की भी तलाश जारी हे । वे भी २०,००० रुपए से कम के नही हैं । पर उनमे खूब टूट फूट होती है । गाव दूर-दूर हैं आने-जाने के साधन नही है, इसलिए अब यहा सरकार गावो मे ही इनक उचित रख रखाव के प्रशिक्षण शिविर चलाने के लिए उन्ही देशो से अनुदान माग रही है जहा से ये पप आए है ।

हैडपप से आगे जाती कुडी
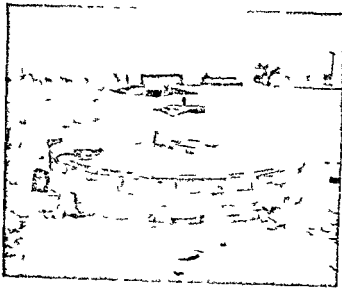
तजानिया के मरुप्रदेश मे भी ऐसी ही अनेक विदेशी सस्थाओ ने 'सस्ते ओर साफ' पानी के प्रवध की योजनाए वनाई है। गावो का वाकायदा सर्वे हुआ हे। ऐसी जानकारी गाव से जिले, जिले से केद्र ओर केद्र से फिर यूरोप गई है। हवाई चित्र खिचे हे, नाजुक विदेशी मशीनो से भूजल की स्थिति आकी गई है — तव कही जाकर २००० कुए वने है। इन सव कुओ पर पानी की शुद्धता वनाए रखने के लिए सीधे पानी खीचने की मनाही हे। इन कुओ पर हेडपप लगाए जा रहे है। हैडपपो मे वच्चे ककड पत्थर डाल देते है। अव यहा भी हैडपपो के 'बेहतर' उपयोग के लिए ग्रामीण गोष्ठिया आयोजित हो रही है। टूट-फूट की शिकायतो से 'त्वरित गति' से निपटने के लिए गाव और जिले के वीच सूचनाओ के आदान प्रदान का नया ढाचा खड़ा हो रहा है।

केन्या के रेतीले भागो मे घरो की छतो पर से वर्षा के पानी को एकत्र करने के प्रयोग चल रहे है। पानी से सबधित अतर्राष्ट्रीय गोष्ठियो मे केन्या सरकार के अधिकारी इन कामो को जनता की भागीदारी के उत्तम उदाहरण की तरह प्रस्तुत करते है।

दुनिया के मरुप्रदेशो–वोत्सवाना, इथोपिया, तजानिया, मलावी केन्या, स्वाजीलेड ओर सहेल के देशो को क्या अपने लिए पानी इसी तरह जुटाना पड़ेगा ? यदि पानी का सारा काम इसी तरह वाहर से आया तो क्या वह मरुभूमि के इन भीतरी गावो मे लवे समय तक निभ पाएगा ? समाज की प्रतिभा, कौशल, अपना तन, मन, धन — सव कुछ अनुपस्थित रहा तो पानी कब तक उपस्थित बना रह पाएगा ?

मरुप्रदेशो के इस चित्र की तुलना करे राजस्थान से, जहा समाज ने सन् १९७५ से १९८१ या १९९५ के बीच मे नही, कुछ सैकड़ो वर्षो से पानी की रजत वूदो को जगह जगह समेट कर सहेज कर रखने की एक परपरा वनाई है। ओर इस परपरा ने कुछ लाख कुडिया कुछ लाख टाके, कुछ हजार कुईया ओर कुछ हजार छोटे-वड़े तालाव वनाए है — यह सारा काम समाज ने अपने तन, मन, धन से किया है। इसके लिए उसने किसी के आगे कभी हाथ नही पसारा।

ऐसे विवेकवान, स्वावलवी समाज को शत शत प्रणाम।

संदर्भ
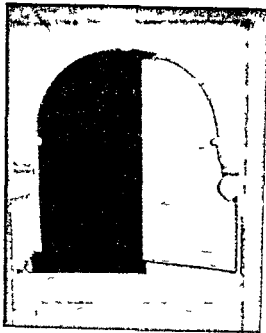
कभी मरुभूमि मे लहराते रहे हाकड़ो के सूख जाने की घटना को राजस्थान का मन पलक दरियाव की तरह लेता है। यह समय या काल के बोध की व्यापकता को याद किए बिना समझ नही आ सकेगा। इस काल दर्शन मे मनुष्य के ३६५ दिनो का एक दिव्य दिन माना गया है। ऐसे ३०० दिव्य दिनो का एक दिव्य वर्ष। ४ ८०० दिव्य वर्षो का सतयुग ३ ६०० दिव्य वर्षो का त्रेता युग २ ४०० दिव्य वर्षो का द्वापर युग और १ २०० दिव्य वर्षो का कलियुग माना गया है। इस हिसाब को हमारे वर्षो मे वदले तो १७ २८ ००० वर्ष का सतयुग १२ ९६ ००० का त्रेता युग ८ ६४ ००० का द्वापर युग और कलियुग ४ ३२ ००० वर्ष का माना गया है। श्रीकृष्ण का समय द्वापर रहा है। जब वे हाकड़ो के क्षेत्र मे आए हैं तब यहा मरुभूमि निकल आई थी। यानी पलक दरियाव की घटना उससे भी पहले कभी घट चुकी थी।

एक कथा इस घटना को त्रेता युग तक ले जाती है। प्रसग है श्रीराम का लका पर चढ़ाई करने का। वीच म है समुद्र जो रास्ता नहीं दे रहा। तीन दिन तक श्रीराम उपवास करते हैं पूजा करते हैं। पर अनुनय विनय के वाद भी जव रास्ता मिलता नहीं तो श्रीराम समुद्र को सुखा देने के लिए वाण चढ़ा लेते हैं। समुद्र देवता प्रकट होते हैं क्षमा मागते हैं। पर वाण तो डोरी पर चढ़ चुका था, अव उसका क्या किया जाए। कहते हैं समुद्र के ही सुझाव पर वह वाण उस तरफ छोड़ दिया गया जहा हाकड़ो था। इस तरह त्रेता युग मे सूखा था हाकड़ो।

समुद्र के किनारे की भूमि को फारसी मे शीख कहते हैं। आज की मरुभूमि का एक भाग शेखावटी है। कहा जाता है कि कभी यहा तक समुद्र था। हकीम युसूफ झुझुनवीजी की पुस्तक झुझुनू का इतिहास मे इसका विस्तार से विवरण है। जैसलमेर री ख्यात मे भी हाकड़ो शब्द आया है। देवीसिह मडावा की पुस्तक शार्दूलसिह शेखावत श्री परमेश्वर सोलकी की पुस्तक मरुप्रदेश का इतिवृत्तात्मक विवेचन (पहला खड) भी यहा समुद्र की स्थिति पर काफी जानकारी देती है। फिर कुछ प्रमाण हैं इस क्षेत्र मे मिलने वाले जीवाश्म के और फिर हैं लोकमन मे तैरने वाले समुद्र के नाम और उससे जुड़ी कथाए।

पुरानी डिगल भाषा के विभिन्न पर्यायवाची कोषो मे समुद्र के नाम लहरो की तरह ही उठते है। अध्याय मे जो ग्यारह नाम दिए गए हैं उनमे पाठक चाहे तो इन्हे और जोड़ सकते हैं

समुद्रा कूपार अवधि सरितापति (अख्य)
पारावारा परठि उदधि (फिर) जळनिधि (दख्य)।
सिधू सागर (नाम) जादपति जळपति (जप्प)
रतनाकर (फिर रट्टह) खीरदधि लवण (सुपप्प)।
(जिण धाम नाम जजाळ जे सटमिट जाय ससार रा
तिण पर पाजा वधिया अे तिण नामा तार रा)॥

ये नाम कवि हरराज द्वारा रचित डिंगल नाममाला से हैं। कवि नागराज पिंगल ने नागराज डिंगल कोष मे समुद्र के नामो को इस तरह गिनाया है

उदध अब अणथाग आच उधारण अळियळ
महण (मीन) महराण कमळ हिलोहळ व्याकुल।
वेळावळ अहिलोल वार ब्रहमड निधूवर
अकूपार अणथाग समद दध सागर सायर।
अतरह अमोघ घड़तव अलील वोहत अतेरुडूववण
(कव कवत अेह पिंगल कहै वीस नाम) सामद (तण)॥

कवि हमीरदान रतनू विरचित हमीर नाममाला मे समुद्र नाममाला कुछ और नए नाम जोड़ती है
मयण महण दध उदध महोदर
रेणायर सागर महराण॥
रतनागर अरणव लहरीरव
गौडीरव दरीआव गभीर।
पारावार उधधिपत मछपति
(अथग अवहर अचळ अतीर)॥
नीरोवर जळराट वारनिधि
पतिजळ पदमालयापित।
सरसवान सामद
महासर अकूपार उदभव-अम्रति॥

कविराज मुरारिदान समुद्र के बचे खुचे अन्य नाम समेट लेते है
सायर महराण स्रोतपत सागर दध रतनागर मगण दधी
समद पयोधर वारध सिधू नदीईसवर वानरथी।
सर दरियाव पयोनध समदर लखमीतात जळध लवणोद
हीलोहळ जळपती वारहर पारावार उदध पाथोद।
सरतअधीस मगरधर सरवर अरणव महाकच्छ अकुमार

छते भी आगोर भी

क्लव्रछपता पयध मकराकर (भाखा फिर) सफरीभडार ।।

इस तरह पानी मे से निकला मरुभूमि का मन समुद्र के इतने नाम आज भी याद रखे है और साथ ही यह विश्वास भी कि कभी यहा फिर से समुद्र आ जाएगा

हक्र कर वहसे हाकड़ो, वध तुट से अरोड़
सिघड़ी सूखो जावसी निर्धनियो रे धन होवसी
उजड़ा खेड़ा फिर वससी भागियो रे भूत कमावसी
इक दिन ऐसा आवसी ।

पार पाकिस्तान के सख्खर जिले म अराड़ नामक स्थान पर एक बाध है । एक दिन ऐसा आएगा कि वह बाध टूट जाएगा । सिध सूख जाएगा बसे खेड़े गाव उजड़ जाएगे उजड़े खेड़े फिर वस जाएगे धनी निर्धन और निर्धन धनी बन जाएगे–एक दिन ऐसा आएगा ।

हाकड़ो की प्रारभिक जानकारी और राजस्थानी मे समुद्र क कुछ नाम हम श्री वदरीप्रसाद साकरिया और श्री भूपतिराम साकरिया द्वारा सपादित *राजस्थानी हिंदी शब्द कोश* पचशील प्रकाशन

हाकड़ो वाद मे समुद्र से दरियाव से बस दरिया नदी बन गया । हाकड़ो को तव इसी क्षेत्र मे कभी लुप्त हो गई प्राचीन नदी सरस्वती के साथ भी रखकर देखा गया है । आज इस क्षेत्र म मीठे भूजल का अच्छा भडार माना जाता है और इसे उन नदियो की रिसन से जोड़ा जाता है । सीमा के उस

जयपुर से मिले । इसे ढग से समझने का अवसर मिला श्री दीनदयाल ओझा (केला पाड़ा जैसलमेर) तथा श्री जेठूसिह भाटी (सिलावटापाड़ा जैसलमेर) के साथ हुई बातचीत से । ऊपर व्यक्त की गई आशा इक दिन ऐसा आवसी भी श्री जेठू से मिली है । डिगल भाषा मे समुद्र के नाम राजस्थानी शोध

सस्थान, चौपासनी, जोधपुर से प्रकाशित और श्री नारायण सिह भाटी द्वारा सपादित डिगल कोष (१९५७) से प्राप्त हुए है।

राज्य की वर्षा के आकड़े राजस्थानी ग्रथागार जोधपुर से प्रकाशित श्री इरफान मेहर की पुस्तक राजस्थान का भूगोल से लिए गए है। राजस्थान की जिलेवार जल कुडली इस प्रकार है

जिला	औसत वर्षा सेटीमीटर मे
जैसलमेर	१६ ४०
श्रीगगानगर	२५ ३७
बीकानेर	२६ ३७
बाड़मेर	२७ ७५
जोधपुर	३१ ८७
चुरू	३२ ५५
नागोर	३८ ८६
जालौर	४२ १६
झुझुनू	४४ ४५
सीकर	४६ ६१
पाली	४९ ०४
अजमेर	५२ ७३
जयपुर	५४ ८२
चित्तौड़गढ़	५८ २१
अलवर	६१ १६
टोक	६१ ३६
उदयपुर	६२ ४५
सिराही	६३ ८४
भरतपुर	६७ १५
धौलपुर	६८ ००
सवाई माधोपुर	६८ ९२
भीलवाड़ा	६९ ९०
डूगरपुर	७६ १७
बूदी	७६ ४१
कोटा	८८ ५६
बासवाड़ा	९२ २४
झालावाड़	१०४ ४७

नये बने जिलो के आकड़े अभी उपलब्ध नही है।

बरस भर मे केवल १६ ४० सेटीमीटर वर्षा पाने वाला जैसलमेर सैकड़ो वर्षो तक ईरान अफगानिस्तान से लेकर रूस तक के कई भागो से होने वाले व्यापार का कद्र बना रहा है। उस दौरान जैसलमेर का नाम दुनिया के नक्शे पर कितना चमकता था इसकी एक झलक जैसलमेर खादी ग्रामोदय परिषद के भडार की एक दीवार पर बने नक्शे मे आज भी देखने मिल सकती है। तब बबई कलकत्ता मद्रास का नाम निशान भी नही था कही।

मरुनायक श्रीकृष्ण की मरुयात्रा और वरदान का प्रसग हमे सबसे पहले श्री नारायणलाल शर्मा की पुस्तिका मे देखने मिला।

थार प्रदेश के पुराने नामो मे मरुमेदनी, मरुधन्व, मरुकातार, मरुधर मरुमडल और मारव जैसे नाम अमर कोष महाभारत प्रबध चितामणी, हितोपदेश नीति शतक वाल्मीकि रामायण आदि सस्कृत ग्रथो मे मिलते है और इनका अर्थ रेगिस्तान से ज्यादा एक निर्मल प्रदेश रहा है।

माटी, जल और ताप की तपस्या

मढक और बादल का प्रसग सब जगह मिलता है। पर यहा डेडरिया मेढक बादलो को देखकर सिर्फ डर्र डर्र नही करता, वह पालर पानी को भर लेने की वही इच्छा मन मे रखता है, जो इच्छा हम पूरे राजस्थानी समाज के मन म दिखती है। और फिर यह साधारण सा दिखने लगने वाला मेढक भी कितना पानी भर लेना चाहता है? इतना कि आधी रात तक तालाब का नेष्टा यानी अपरा चल जाए

तालाब पूरा लबालब भर जाए ।

डेडरियो की तीसरी पक्ति गाते समय बच्चे इस पक्ति मे आए शब्द तलाई के बदले अपने मोहल्ले या गाव के तालाब का नाम लेते हैं । दूसरी पक्ति पालर पानी भरू भरू के बदले कहीं-कहीं मेढक ठाला ठीकर भरू भरू भी कहता है ।

डेडरियो का यह प्रसग हमे जैसलमेर के श्री जेठूसिह भाटी से मिला और फिर उसमे कुछ और बारीकिया जैसलमेर के ही श्री दीनदयाल ओझा ने जोड़ी हैं बादल उमड़ आने पर बच्चे तो डेडरियो गाते निकलते हैं और बड़े लोग गूगरिया मिट्टी के बर्तन मे पकाते हैं । फिर इसे चारो दिशाओ मे उछाल कर हवा पानी को अर्घ्य अर्पित करते है । इस तरह वे वर्षा का अरूठ मिटाते हैं यानी वर्षा यदि किसी कारण से रूठ गई है तो इस भेट से उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं । यह अनुष्ठान नगे सिर किया जाता है । इस दौरान पगड़ी नहीं पहनी जाती । इस तरह लोग जल देवता को यह जताना चाहते हैं कि वे दुखी और सतप्त हैं । शोक मे डूबे अपने भक्तो को प्रसन्न करने अपनी अरूठ दूर कर वर्षा को अवतरित होना पड़ता है ।

कहीं-कही आखा तीज अक्षय तृतीया पर मिट्टी के चार कुल्हड़ भूमि पर रखे जाते हैं । ये चार महीनो– जेठ, आषाढ़ सावन और भादो के प्रतीक माने जाते हैं । इनमे पानी भरा जाता है । फिर उत्सुक निगाहे देखती हैं कि कौन-सा कुल्हड़ पहले गल जाता है । जेठ का कुल्हड़ गल जाए तो वर्षा स्थिर मानी जाएगी, आषाढ़ का गले तो खडित रहेगी और सावन या भादो मे से कोई पहले फूट जाए तो माना जाता है कि खूब पानी बरसेगा ।

नए लोगो के लिए चार महीनो के कुल्हड़ो का यह प्रसग टोटका होगा पर यहा पुराने लोग मौसम विभाग की भविष्यवाणी को भी टोटके से ज्यादा नहीं मानते ।

वर्षा काल मे बिजली के चमकने और गरजने मे ध्वनि और प्रकाश की गति का ठीक स्वभाव समाज परखता रहा है तीस कोसरी गाज, सौ कोसरी खैन यानी बिजली कड़कने की आवाज तीस कोस तक जाती है पर उसके चमकने का प्रकाश तो सौ कोस तक फैल जाता है । ध्वनि और प्रकाश का यह बारीक अतर हमे श्री जेठूसिह से मिला है ।

राज्य के विस्तार क्षेत्रफल आदि के आकड़ो मे श्री इरफान मेहर की पुस्तक राजस्थान के भूगोल से सहायता ली गई है और फिर उसमे इस बीच बने नए जिले और जोड़े गए हैं । राजस्थान के भूगोल का आधुनिक वर्गीकरण और मानसून की हवा की विस्तृत जानकारी भी इसी पुस्तक से ली गई है ।

खारी जमीन का पहला परिचय हमे साभर क्षेत्र की यात्रा से मिला । यहा तक हम तिलोनिया अजमेर स्थित सोशल वर्क एड रिसर्च सेटर के साथी श्री लक्ष्मीनारायण श्री लक्ष्मणसिह और श्रीमती रतनदेवी के सौजन्य से पहुच सके थे । बीकानेर का लूणकरणसर क्षेत्र तो नाम से ही लवणयुक्त है । इस क्षेत्र को समझने मे हमे वहा काम कर रहे उरमूल ट्रस्ट से मदद मिली ।

इस अध्याय मे ताप से सबधित अश पीय जलकूडो माछलो और भडली पुराण की प्रारभिक

सूचनाए श्री वदरीप्रसाद साकरिया और श्री भूपतिराम साकरिया के राजस्थानी शब्दकोश से मिली हैं। वर्षा-सूचको म चद्रमा की ऊभो या सूतो स्थिति हमे श्री दीनदयाल ओझा और श्री जेठूसिह ने समझाई। डक भडली पुराण मे वर्षा से सबधित कुछ अन्य कहावते इस प्रकार हैं

मगसर तणी जे अष्टमी वादली बीज होय। सावण वरसै भडली साख सवाई जोय ॥

यदि मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को वादल और विजली दोनो हो तो श्रावण मे वर्षा होगी और फसल सवाई होगी।

मिंगसर वद वा सुद मही आधै पोह उरे। धवरा धुध मचाय दे (तौ) समियौ होय सिरे ॥

यदि मार्गशीर्ष के पहले या दूसरे पक्ष मे अथवा पौप के प्रथम पक्ष मे प्रात काल के समय धुध (कोहरा) हो तो जमाना अच्छा होगा।

पोष अधारी दसमी चमकै बादल बीज। तौ भर वरसै भादवौ, सायधण खेलै तीज ॥

यदि पौप कृष्ण दसमी को वादलो मे विजली चमके तो पूरे भादो मे वर्षा होगी और स्त्रिया तीज का त्यौहार अच्छी तरह मनाएगी।

पोह सविमल पेखजै चैत निरमल चद। डक कहै हे भड्ड मण हूता अन चद ॥

यदि पौष मे घने वादल दिखाई दे और चैत्र के शुक्ल पक्ष मे चद्रमा स्वच्छ दिखाई पड़े यानी कोई वादल दिखाई न दे तो डक भडली से कहता है कि अनाज मन से भी सस्ता होगा।

फागण वदी सु दूज दिन वादल होए न बीज। वरसै सावण भादवौ साजन खेलौ तीज ॥

यदि फाल्गुन कृष्ण द्वितीया के दिन वादल या विजली नही हो तो श्रावण व भादो मे अच्छी वर्षा होगी, अत हे पति तीज अच्छी तरह मनाएगे।

वादल जहा सबसे कम आते हैं वहा बादलो के सबसे ज्यादा नाम हैं। इस लबी सूची की – कोई चालीस नामो की पहली छटाई हम राजस्थानी हिन्दी शब्द कोश की सहायता से कर सके हैं। इनमे विभिन्न डिगल कोशो से कई नाम और जोड़े जा सकते हैं। कवि नागराज का डिगल कोश मेघ के नाम इस प्रकार गिनाता है

पावस प्रथवीपाळ वसु हब्र वैकुठवासी
महीरजण अब मेघ इलम गाजिते-आकासी।
नैणे सघण नभराट ध्रवण पिगळ धाराधर
जगजीवण जीमूत जलद्ग जळमडल जळहर।
जळवहण अभ्र वरसण सुजळ महत कळायण (सुत्रमणा)

कमल के पत्तो पर बुनियाद

परजन्य मुदिर पाळग भरण (तीस नाम) नीरद (तणा) ॥

श्री हमीरदान रतनू विरचित हमीर नाम माला मे बादलो के नामो की घटा इस प्रकार छा जाती है

पावस मुदर बळाहक पाळग
धाराधर (वळि) जळधरण ।
मेघ जळद जळवह जळमडळ
घण जगजीवन घणाघण ॥
तड़ितवान तोईद तनयतू,
नीरद वरसण भरण निवाण ।
अभ्र परजन नभराट आकासी,
कामुक जळमुक महत किलाण ॥
(कोटि सघण, सोभा तन कान्हड़
स्याम त्रेभुअण स्याम सरीर ।
लोक माहि जम जोर न लागै
हाथि जोड़ि हरि समर हमीर) ॥

श्री उदयराम बारहठ विरचित अवधान माला मे बचे हुए नाम इस तरह समेटे गए है

धाराधर घण जळधरण मेघ जळद जळमड
नीरद बरसण भरणनद पावस घटा (प्रचड) ।
तड़ितवान तोयद तरज निरझर भरणनिवाण,
मुदर बळाहक पाळमहि जळद (घणा) घण (जाण) ।
जगजीवन अभ्रय रजन (हू) काम कहमत किलाण,
तनयतू नभराट (तव) जळमुक गयणी (जा ण) ॥

डिगल कोष की एक अन्य सूची जिसके कवि अज्ञात ही है बादल के कुछ ज्ञात-अज्ञात नाम और जोड़ती है

मेघ जळद नीरद जळमडण
घण वरसण नभराट घणाघण ।
महत किलाण अकासी जळमुक
मुदर बळाहक पाळग कामुक ।
धाराधर पावस अभ्र जळधर
परजन । तड़ितवान तोयद (पर) सघण तनय (तू)
स्यामघटा (सजि)
गजणरोर निवाणभर गजि ।

काली घटाआ की तरह उमड़ती यह सूची कविराजा मुरारिदान द्वारा रचित डिगल कोष के इस अश पर रोकी भी जा सकती है

मेघ घनाधन घण मुदिर जीमूत (र) जळवाह
अभ्र बळाहक जळद (अख) नभधुज धूमज (नाह) ॥

डिगल कोष के ये सदर्भ हमे श्री नारायण सिह भाटी द्वारा सपादित ओर राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी, जोधपुर द्वारा सन् १९५७ म प्रकाशित *डिगल-कोष से मिले हे ।*

बादलो के स्वभाव, रग रूप, उनका इस से उस दिशा मे दौड़ना किसी पहाड़ पर थोड़ा टिक कर आराम करना आदि की प्रारभिक सूचनाए राजस्थानी
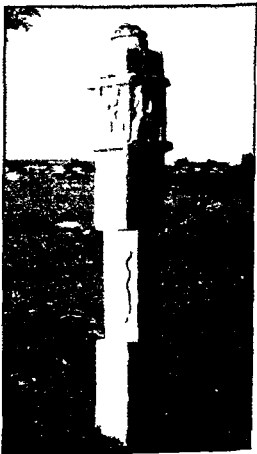
हिन्दी शब्द कोश से ली गई है ।

इस जमाने मे जमानो शब्द का ठीक भाव हम श्री ओम थानवी सपादक जनसत्ता १८६ बी इडस्ट्रियल एरिया, चडीगढ़ से समझ सके। श्री थानवी ने सन् ८७ मे सेटर फार साइस एड एनवायर्नमेट नई दिल्ली की ओर से मिली एक शोधवृत्ति पर सभवत पहली वार राजस्थान के जल सग्रह पर एक विस्तृत आलेख लिखा था और इस परपरा की भव्य झलक देने वाले उम्दा छाया चित्र खीचे थे । फिर जमानो पर विस्तृत जानकारी हमे श्री जेठूसिह से मिली । उन्ही ने जेठ का महत्व, जेठ की प्रशसा मे ग्वाला के गीत और महीनो की आपसी वातचीत मे जेठ की श्रेष्ठता से जुड़ी जानकारिया दी ।

पानी वरसने की क्रिया तूठणो से लेकर उवरेलो यानी वर्षा के सिमटने की पूरी प्रक्रिया को हम राजस्थानी हिन्दी शब्द कोश की सहायता से समझ पाए है ।

राजस्थान की रजत बूदे

सचमुच नेति-नेति जैसी कुई को कुछ हद तक ही समझ पाने मे हमे सात-आठ वरस लग गए – इसे स्वीकार करने मे हमे जरा भी सकोच नही हो रहा है । पहली बार कुई देखी थी सन् १९८८ मे चुरू जिले के तारानगर क्षेत्र मे । लेकिन यह कैसे काम करती है खारे पानी के वीच भी खड़ी रह कर यह कैसे मीठा पानी देती रहती है – इसकी प्रारभिक जानकारी हम वीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति की एक गोष्ठी मे भाग लेने आए ग्रामीण प्रतिनिधियो से हुई वातचीत से मिली थी । वाड़मेर म वनने वाली पार का परिचय वहा के नेहरू युवा केद्र के समन्वयक श्री भुवनेश जैन से मिला ।

कभी स्वय गजधर रहे श्री किशन वर्मा ने चेजारो और चेलवाजी के काम की वारीकिया और कठिनाइया समझाई । कुई खोदते समय खीप की रस्सी से उसे वाधते चलने और भीतर हवा की कमी को दूर करने ऊपर से एक एक मुट्ठी रेत जोर से फेकने का आश्चर्यजनक तरीका भी उन्होने वताया । श्री वर्मा का पता है १ गोल्डन पार्क रामपुरा, दिल्ली ३५ ।

कुई और रेजाणी पानी का शाश्वत सबध हमे जैसलमेर के श्री जेठूसिह भाटी से हुए पत्र व्यवहार से और फिर जैसलमेर मे उनके साथ हुई बातचीत से समझ मे आया । रेजाणी पानी ठीक से टिकता है विट्टू रो वल्लियो के कारण । बिट्टू मुल्तानी मिट्टी या मेट, छोटे ककड़ यानी मुरडियो से मिलकर बनी पट्टी है । इसम पानी नमी की तरह देर तक, कही कही एक दो वर्ष तक बना रहता है । खड़िया पट्टी भी काम तो यही करती है पर इसमे पानी उतनी देर तक नही टिक पाता । विट्टू से ठीक उलटी है धीये रो वल्लियो । इससे पानी रुकता नही और इसलिए ऐसे क्षेत्रा से रेजाणी पानी नही लिया जा सकता और इसलिए इनमे कुइया भी नही वन सकती ।

सापणी और लट्ठो से पार की वधाई की जानकारी भी उन्ही से मिली है । जैसलमेर से २५ किलोमीटर दूर खड़ेरो की ढाणी गाव मे पालीवालो की छह बीसी (एक सौ वीस) पारो को हम श्री जेठूसिह और उसी गाव के श्री चैनारामजी के साथ की गई यात्रा मे समझ पाए । आज इनमे से ज्यादातर पार रेत मे दव गई है । ऐसा ही एक और गाव है छतारगढ़ । इसम पालीवाला के समय की ३०० से ज्यादा कुइयो के अवशेप मिलते हैं । कई पारा म आज भी पानी आता है ।

खड़ेरो की ढाणी जैसे कई गावा को आज एक नए वने ट्यूववैल से पानी मिल रहा है । पानी ६० किलोमीटर दूर से पाइप लाइन के माध्यम से आता

कुमुदनी से ढका स्वच्छ जल

है। ट्यूबवैल जहा खोदा गया है, वहा बिजली नहीं है। वह डीजल से चलता है। डीजल और भी कहीं दूर से टैंकर के जरिए आता है। कभी टैंकर के ड्राइवर छुट्टी पर चले जाते है तो कभी ट्यूबवैल चलाने वाले। कभी डीजल ही उपलब्ध नहीं होता। उपलब्ध होने पर उसकी चोरी भी हो जाती है। कभी रास्ते मे पाइप लाइन फट जाती है – इस तरह के अनेक कारणो से ऐसे गावो मे पानी पहुचता ही नही है। नई बनी पानी की टकिया खाली पड़ी रहती हैं और गाव इन्ही पारो से पानी लेता है।

राजस्थान की सस्थाओ अखबारो को पानी देने की ऐसी नई सरकारी व्यवस्था से जोड़े गए जोड़े जा रहे गावो की नियमित जानकारी रखनी चाहिए। नए माध्यम से पानी आ रहा है कितना आ रहा है इसकी हाजरी लगनी चाहिए। तभी समझ मे आ सकेगा कि आधुनिक मानी गई पद्धतिया मरुभूमि मे कितनी पिछड़ी सावित हो रही हैं।

इदिरा गाधी नहर से जोड़े गए उन गावो की भी ऐसी ही हालत हो चली है जहा पहले पानी कुइयो से लिया जाता था। चुरू जिले के बूचावास गाव मे कोई पचास से ज्यादा कुइया थीं। सारा गाव शाम को एक साथ इन पर पानी लेने जमा होता था। मेला सा लगता था। अव नया पानी कहीं दूर से पाईप लाइन के जरिए सीमेट की एक बड़ी गोल टकी मे आता है। टकी के चारो तरफ नल लगे हैं। इस नए पनघट पर मेला नही भीड़ जुटती है। झगड़ा होता है। घड़े फूटते हैं। टकी मे पानी रोज नहीं आता कभी-कभी तो हफ्ते दो हफ्ते मे एकाध बार पानी आता है। इसलिए पानी लेने के लिए छीनाझपटी होती है। गाव के मास्टरजी का कहना है कि शायद प्रतिदिन का औसत निकाले तो हमे नया पानी उतना ही मिल रहा है जितना बिना झगड़े

कुइयो से मिल जाता था। इस बीच उखड़-उजड़ चुकी कई कुइया फिर से ठीक की जा रही हैं।

कुइया सचमुच स्वयसिद्ध और समयसिद्ध सावित हो रही हैं।

ठहरा पानी निर्मला

वहते पानी को ठहरा कर वर्ष भर निर्मल वनाए रखने वाली कुडी की पहली झलक हमे सन् ८८ मे सेटर फॉर साइस एड एनवायर्नमेंट के श्री अनिल अग्रवाल और सुश्री सुनीता नारायण के साथ दिल्ली से वीकानेर जाते समय दिखी थी। फिर कुई की तरह इसे भी समझने म हमे काफी समय लगा है।

कुडी शब्द कुड से और कुड यज्ञ कुड से वना माना जाता है। जैसलमेर जिले मे वहुत पुराना बैसाखी कुड भी है जहा आसपास के वहुत वड़े क्षेत्र से लोग अस्थिया विसर्जन के लिए आते हैं। कहा जाता है कि वैसाखी पूर्णिमा को यहा स्वय गगाजी आती हैं। ऐसी कथाए कुड के जल की निर्मलता पवित्रता वताती हैं।

कुड वनाने की प्रथा कितनी पुरानी है ठीक ठीक कहा नहीं जा सकता। वीकानेर-जैसलमेर क्षेत्र मे दो सौ-तीन सौ वरस पुराने कुड टाके भी मिलते हैं। नई तकनीक हैंडपप को भी टिकाने वाले कुड चुरू क्षेत्र मे खूब हैं। कुडियो का समयसिद्ध और स्वयसिद्ध स्वभाव हमे जनसत्ता, दिल्ली के श्री सुधीर जैन ने समझाया।

फोग की टहनियो से वनी कुडिया वीकानेर जिले की सीमा पर पाकिस्तान से सटे जालवाली गाव मे हमे श्री ओम थानवी और राजस्थान गो सेवा सघ के श्री भवरलाल कोठारीजी के कारण देखने मिली। इन कुडियो पर सफेद रग पोतने का रहस्य श्री ओम थानवी ने समझाया।

खड़िया से वनी कुडिया वीकानेर-जैसलमेर मार्ग पर वीच-वीच मे विखरी हैं। वज्जू क्षेत्र मे भी हमे ऐसी कुडिया उरमूल ट्रस्ट के श्री अरविंद ओझा के साथ की गई यात्रा मे देखने मिली। कलात्मक चवूतरो की तरह वनी कुडिया हम जैसलमेर के रामगढ़ क्षेत्र मे राजस्थान गो सेवा सघ के श्री जगदीशजी के साथ की गई यात्रा मे देख पाए। जैसलमेर मे कुछ ही पहले वसे और वने एक पूरे नए गाव कवीर वस्ती मे हर घर के आगे ऐसी ही कुडिया वनाई गई हैं। इसकी सूचना हमे जैसलमेर खादी ग्रामोदय परिषद के श्री राजू प्रजापत से मिली। छ्तो और आगन के आगौर से जोड़ कर दुगना पानी एकत्र करने वाला टाका जोधपुर के फलोदी शहर मे श्री ओम थानवी के सौजन्य से देखने मिला। चुरुरो के पानी को वड़ी किफायत के साथ लेने वाले टाको की जानकारी दी है श्री जेठूसिह भाटी ने। श्री सतोषपुरी नामक साधु ने ऐसे टाके

एक ही स्रोत से चलते कुडी और टीवी

अभी कुछ ही पहले बनाए है, जैसलमेर के नरसिहो की ढाणी के पास। सन्यास लेन से पहले ये चरवाहे थे। इस क्षेत्र मे बरसने वाले पानी को बहते देखते थे। साधु बनने के बाद उन्हे लगा कि इस पानी का उपयोग होना चाहिए। उनका बचा काम अब उनके शिष्य यहा पूरा कर रहे है। ससार छोड़ चुके सन्यासी पानी के काम को कितने आध्यात्मिक ढग से अपनाते हे—इसकी विस्तृत जानकारी श्री जेठूसिह से मिल सकती है।

जयगढ़ किले म बने विशाल टाके की पहली *जानकारी हम जयपुर शहर के सग्रहालय मे लगे एक* विज्ञापन से मिली थी। उसमे इसे विश्व का सबसे बड़ा टाका कहा गया था। बाद मे यहा हम चाकसू की सस्था एग्रो एक्शन के श्री शरद जोशी के साथ गए और प्रारभिक जानकारी भी उन्ही से मिली। इस सबसे बड़े टाके की सक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है

टाके का आगौर जयगढ़ की पहाड़ियो पर ४ किलोमीटर तक फैला है। बड़ी छोटी अनेक नहरो का जाल पहाड़ियो पर बरसने वाले पानी को समेट कर किले की दीवार तक लाता है। नहरो की ढलान भी कुछ इस ढग से बनी है कि इनमे पानी बहने के बदले धीरे धीरे आगे चढ़ता है। इस तरह पानी के साथ आने वाली साद पीछे छूटती जाती है। नहरो के रास्ते मे भी कई छोटे छोटे कुड बने हैं। इनमे भी पानी साद छोड़ कर साफ होकर आगे मुख्य टाके की ओर बहता है।

जयगढ़ टाके का गवाक्ष

आपातकाल के दौरान यानी सन् १९७५ ७६ मे सरकार ने इन्ही टाको मे जयपुर घराने के छिपे खजाने को खोजने के लिए भारी खुदाई की थी। यह कुछ महीनो तक चली थी। तीनो टाको के आसपास खुदाई हुई। टाको का सारा पानी बड़े बड़े पपो की सहायता से उलीचा गया।

आयकर विभाग के इन छापो मे खजाना मिला या नही, पता नही पर वर्षा जल के सग्रह का यह अद्भुत खजाना चारो तरफ की गहरी खुदाई से कुछ लुट ही गया था। फिर भी यह उसकी मजबूती ही मानी जाएगी कि कोई चार सौ बरस पहले बने ये टाके इस विचित्र अभियान को भी सह सके हैं और आज भी अपना काम बखूबी कर रहे हैं।

इन टाका छापो और खुदाई की विस्तृत जानकारी श्री आर एस खगारोत और श्री पी एस
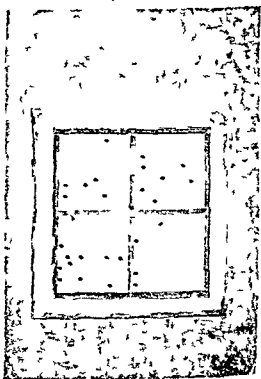
नाथावत द्वारा लिखी गई अग्रेजी पुस्तक जयगढ़ द इनविसिबल फोर्ट ऑफ आमेर से मिल सकती है। प्रकाशक है आर बी एस ए पब्लिशर्स, एस एम एस हाईवे जयपुर।

राजस्थान मे चारो तरफ रजत बूदो की तरह छिटकी हुई इन कुडियो टाको कुइयो पार और तालाबो ने समाज की जो सेवा की है पीने का जो पानी जुटाया है उसकी कीमत का हम आज अदाज

भी नही लगा सकते । किसी कद्रीय ढाचे से इस काम को पूरा करना एक तो सभव नही और यदि कुछ थोड़ा बहुत हो भी जाए तो उसकी कीमत कुछ करोड़ रुपए की होगी । राजस्थान सरकार के जन स्वास्थ्य अभियात्रिक विभाग की ओर से समय समय पर यहा वहा कुछ पेयजल योजनाओ को बनाने के लिए निविदा सूचनाए अखबारा म निकलती रहती हैं । फरवरी ९४ मे दिल्ली के जनसत्ता दैनिक म प्रकाशित एक ऐसी ही निविदा सूचना म बाड़मेर जिले की शिव पचपदरा चौहटन बाड़मेर और शिवाना तहसील के कुल दा सौ पचास गावा म जलप्रदाय योजना बनाने की अनुमानित लागत ४० करोड़ बताई गई है । इसी निविदा मे बीकानेर जिले की बारह तहसीला के छह सौ गावा म होने वाले काम की लागत ९६ करोड़ रुपए आने वाली है ।

इसी के साथ फरवरी ९४ म राजस्थान के अखबारा म छपी निविदा सूचना भी ध्यान देने लायक है । इसमे जोधपुर जिल क फलोदी क्षेत्र मे इसी विभाग की ओर से २५ हजार लीटर से ४५ हजार लीटर तक की क्षमता के भूतल जलाशय यानी कही और से लाए गए पानी को जमा करने वाले टाका के निर्माण की योजना है । इन सबकी अनुमानित लागत ४३ हजार रुपए से ८६ हजार रुपए बैठ रही है । इनम एक लीटर पानी जमा रखने का खर्च लगभग दो रुपए आएगा । पर पानी कही और से लाना होगा । उसका खर्च अलग । यह काम फलोदी के केवल तेरह गावो म होगा । कुल खर्च है लगभग नौ लाख रुपए ।

अब कल्पना कीजिए राजस्थान के समाज के उस विभाग की जो एक साथ बिना विज्ञापन निविदा सूचना और ठेकेदारी के अपने ही बलबूते पर कोई ३० हजार गावो मे निर्मल पानी जुटा सकता था ।

बिदु मे सिधु समान

साई इतना दीजिए के बदले साई जितना दीजिए बाम कुटुम समा कर दिखाने वाल इस समाज की बहुत सी जानकारी हम पिछली पुस्तक आज भी खरे हे तालाब को तैयार करते समय मिली थी । इस अध्याय का अधिकाश भाग उस पुस्तक के मृगतृष्णा झुठलाते तालाब पर आधारित है । तालाब कैसे बनते ह कौन लोग इन्ह बनाते है तालाबा के आकार प्रकार ओर उनके तरह तरह के नाम वे परपराए जो तालाब को सहेज कर वर्षो तक रखना जानती थी– आदि अनेक बाते गाधी शाति प्रतिष्ठान से छपी उस पुस्तक म आ चुकी है । इस विषय म रुचि रखने वाले पाठका को उसे भी पलट कर देख लेना चाहिए ।

तालाब के बड़े कुटुब की सबसे छोटी और प्यारी सदस्या नाडी की प्रारभिक जानकारी हम मरुभूमि विनान विद्यालय क निदेशक श्री सुरेन्द्रमल मोहनोत से मिली थी । उन्होने जोधपुर शहर म जल सग्रह की उन्नत परपरा पर काम किया है । उनके इस अध्ययन से पता चलता है कि शहरा मे भी नाडिया बनती रही हे । जोधपुर मे अभी भी कुछ नाडिया बाकी है । इनमे प्रमुख है जोधा की नाडी सन् १५२० म बनी गोल नाडी गणेश नाडी श्यामगढ़ नाडी नरसिह नाडी और भूतनाथ नाडी ।

साभर झील के आगोर मे चारो तरफ खारी जमीन के बीच मीठे पानी की तलाई हम प्रयत्न नामक सस्था के श्री लक्ष्मीनारायण और सोशल वर्क एड रिसर्च सेटर की श्रीमती रतनदेवी तथा श्री लक्ष्मणसिह के साथ की गई यात्रा म देख समझ सके । इनके पते है प्रयत्न ग्राम शोलावता पो श्रीरामपुरा बरास्ता नरैना जयपुर तथा सोशल वर्क एड रिसर्च सैटर तिलोनिया बरास्ता मदनगज अजमेर ।

घड़सीसर
जैसलमेर

बाल विवाह के विरुद्ध कानून बनवाने वाले समाज सुधारक श्री हरविलास शारदा ने अपनी एक पुस्तक 'अजमेर हिस्टारिकल एड डिस्क्रिप्टिव मे अजमेर तारागढ़ अन्नासागर विसलसर पुष्कर आदि पर विस्तार से लिखा था। सन् १९३३ के अक्टूबर मे अजमेर मे अखिल भारतीय स्वदेशी औद्योगिक प्रदर्शनी लगी थी। प्रदर्शनी समिति के अध्यक्ष श्री हरविलास शारदा ही थे। कई लोगो को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस विषय पर लगी प्रदर्शनी मे अजमेर के अन्नासागर नामक तालाब पर विशेष जानकारी दी गई थी।

इसी क्षेत्र मे पानी और गोचर को लेकर काम कर रहे श्री लक्ष्मणसिह राजपूत से हमे यहा के लगभग हर गाव मे बजारो के द्वारा बनाई गई तलाइयो की सूचना मिली और फिर उनके साथ की गई यात्राओ मे इन्हे देखने का अवसर भी। यहा इन्हे दड-तलाई कहते है। इन सब तलाइयो के किनारे दड यानी स्तभ लगे है बजारो के। सभवत इसी कारण इनको इस नाम से याद रखा गया है। श्री लक्ष्मणसिह ऐसी तलाइयो की टूट फूट को ठीक करने का भी अभियान चला रहे है। उनका पता है ग्राम विकास नवयुवक मडल ग्राम लापोडिया, बरास्ता दूदू, जयपुर।

जैसलमेर बाड़मेर बीकानेर के आकड़े हमे इन जिलो के गजेटियरो और सन् १९८१ की जनगणना रिपोर्ट से मिले है। इन्ही म हमने मरुभूमि का वह डरावना रूप देखा है जो सारे योजनाकारो के मन मे बुरी तरह व्याप्त है।

जैसलमेर के तालाबो की प्रारभिक सूची हमे श्री नारायण शर्मा की पुस्तक जैसलमेर से मिली थी। इसके प्रकाशक है गोयल ब्रदर्स सूरज पोल, उदयपुर। फिर हर बार इस सूची मे दो चार नए नाम

जुड़ते गए है। हम आज भी शहर की पूरी सूची का दावा तो नही कर सकते। मरुभूमि के इस भव्यतम नगर मे हर काम के लिए तालाब बने थे। बड़े पशुओ के लिए तो थे ही, बछड़ो तक के लिए अलग तालाब थे। बछड़े को बड़े पशुओ के साथ दूर तक चरने नही भेजा जाता। इसलिए उनके तालाब शहर के पास ही बने थे। एक जगह तीन तलाई एक साथ थी– इस जगह का नाम ही तीन तलाई पड़ गया था। आज इन्हे मिटा कर इनके ऊपर इदिरा गाधी स्टेडियम खड़ा है।

जैसलमेर के तालाबो को समझने मे हमे श्री भगवानदास माहेश्वरी श्री दीनदयाल ओझा, श्री ओम थानवी और श्री जेठसिह भाटी से बहुत सहायता मिली है। ओझाजी और भाटीजी ने तो हमे सचमुच उगली पकड़ कर इनकी बारीकिया दिखाई समझाई है।

घड़सीसर गड़सीसर गड़ीसर– नाम घिसता है घिस कर चमक देता है। यह तालाब समाज के मन मे तैरता है। अनेक नाम, अनेक रूप। यह जैसलमेर के लिए गर्व का भी कारण है और घमड का भी। कोई यहा ऐसा बड़ा काम कर दे जो उसकी हैसियत से बाहर का हो तो उस काम का सारा श्रेय कर्ता से छीन कर गड़ीसर को सोप देने का भी चलन रहा है– क्या गड़ीसर मे मुह धो आया था? और यदि कोई डीगे हाक रहा हो तो उसे भी जमीन पर उतारने के लिए कोई कह देगा जा गड़ीसर पोणी स माडो धो या। जा गड़ीसर के पानी से मुह तो धो कर आ जरा।

लोग गड़ीसर और उसे बनाने वाले महारावल घड़सी को आज भी इतना मानते है कि किसी भी प्रसग मे बहुत दूर से यहा नारियल चढ़ाने आते है। महारावल घड़सी की समाधि पाल पर कहा है इसे उनके वशज भले ही भूल गए हो लोगो को तो आज भी मालूम है।

कहते है आजादी से पहले तक गड़ीसर के लिए शहर मे अनुशासन भी खूब था। इस तालाब मे एक अपवाद को छोड़ नहाना तैरना मना था – बस पहली बरसात मे सबको इसमे नहाने की छूट होती थी। बाकी पूरे बरस भर इसकी पवित्रता के लिए आनद का एक अश, तैरने नहाने का अश थोड़ा बाध कर रखा जाता था।

महारावल घड़सी
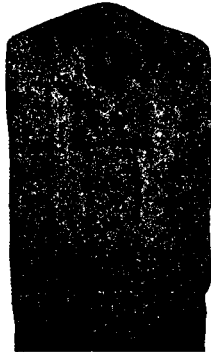
आनद के इस सरोवर पर समाज अपनी ऊच नीच भी भुला देता था। कही दूर पानी बरसने की तैयारी दिखे तो मेघवाल परिवारो की महिलाए गड़ीसर की पाल पर अपने आप आ जाती वे कलायण गीत गाती इद्र को रिझाने। इद्र के कितने ही किस्से है न जाने किस किस को रिझाने के लिए अप्सराए भेजने के। लेकिन यहा गड़ीसर पर रीझ जाते थे स्वय इद्र। और मेघवाल परिवार की स्त्रिया इस गीत के लिए पैसा नही स्वीकार करती थीं। कोई उन्हे इस काम की मजदूरी या इनाम देने की भी हिम्मत नही कर सकता था। स्वय महारावल राजा

उन्हे इस गीत के बाद प्रसाद देते थे। प्रसाद मे एक पसेरी गेहू और गुड़ होता था। यह भी सब वही पाल पर बाट दिया जाता था।

गड़ीसर मे कहा-कहा से कितना पानी आता है यह समझ पाना कठिन काम है। रेत का कण कण रोककर पानी की एक एक बूद गड़ीसर की तरफ बह सके इसके लिए मीलो लबी आड़ (एक तरह की मेडबदी जो पानी को एक तरफ से मोड़ कर लाती हैं) भी बनाइ गइ थी। तालाब क नीचे बने थे अनेक बेरे यानी कुए। और कभी इन बेरो तक की प्रशसा मे सस्कृत और फारसी म पक्तिया लिखी गई थी।

आज गड़ीसर मे नहर का पानी दूर पाइप से लाकर डाला जा रहा हे। यह विवरण लिखते लिखते सूचना मिली कि जो पाइप लाइन टूट गई थी वह अब फिर ठीक हो गई है और गड़ीसर म नहर का पानी फिर से आने लगा है। पर पाईप लाइन का कोई भरोसा नही। लिखते लिखते ठीक हो जाने वाली पाइप लाइन पढ़त पढ़त फिर से टूट सकती हे।

बाप के तालाब की यात्रा बीकानेर की सस्था उरमूल ट्रस्ट के श्री अरविद ओझा की मदद से की गई। बाप की कहानी हमे उस्ताद निजामुद्दीन से मिली है। उनका पता है बाल भव । कोटला रोड नई दिल्ली।

जसेरी का जस हमने श्री जेठसिह भाटी से सुना था। फिर श्री भाटी के सौजन्य से ही इस भव्य तालाब के दर्शन हो सके। और जगहो पर तालाब सूख जाते हे उनके आसपास के कुए चलते रहते है लेकिन यहा आसपास के कुए सूख जाते है जसेरी मे पानी बना रहता है। यहा पास ही वन विभाग की एक पौधशाला भी है। उनका पानी का अपना प्रवध भी गर्मी मे जवाब दे जाता है तो वे दूर जसेरी के पानी से अपने पोधा को टिकाए रख पाने है।

टीडा रायसिह के बाध की चक्किया

जसेरी के प्रति भी लोगा का प्रेम अद्‌भुत है। श्री चैनाराम भील हें। ऊट और जीप से पर्यटको को यहा वहा घुमा कर अपनी जीविका चलाते है पर जसेरी जाने का कोई अवसर मिले तो बाकी सब काम छोड़ सकते है। उन्होने जसेरी की टूट फूट को कैसे ठीक किया जा सकता है इस पर काफी सोचा विचारा हे। यह सारा नक्शा कागज पर नही, उनके मन मे है।

जसेरी पर गाधी शाति केद्र हैदराबाद और गाधी शाति प्रतिष्ठान नई दिल्ली ने एक सुदर पोस्टर भी प्रकाशित किया है।

जल और अन्न का अमरपटो

खडीनो की प्रारभिक जानकारी हमे जैसलमेर मे पालीवालो के उजड़े हुए गावो मे श्री किरण नाहटा और जैसलमेर जिला खादी ग्रामोदय परिषद के श्री राजू प्रजापत के साथ घूमते हुए मिली थी। बाद मे इसे वढ़ाया पानी मार्च के श्री अरुण कुमार और श्री शुभू पटवा ने। जैसलमेर की कुछ प्रसिद्ध खडीनो के चित्र वयोवृद्ध गाधीवादी श्री भगवानदास माहेश्वरीजी ने भिजवाए। और आगे विस्तार से इस विषय को समझने का मोका मिला श्री दीनदयाल ओझा, श्री जेठूसिह भाटी ओर जैसलमेर जिला खादी ग्रामोदय परिषद के श्री चौइथमल के साथ की गई यात्राआ से।

जोधपुर मे ग्रामीण विज्ञान समिति सस्था की ओर से नई खडीनो को बनाने का काम हुआ है। पता है पो जेलू गगाड़ी जोधपुर।

ज्ञानी और सीधे सादे ग्वाले के बीच का सवाद हमे जेठूजी से मिला है। पूरा सवाद इस प्रकार है

ज्ञानी कहते है

सूरज रो तो तप भलो नदी रो तो जल भलो
भाई रो तो बल भलो गाय रो तो दूध भलो
चारो वातो भले भाई चारो वातो भले भाई

सूरज का तप अच्छा है जल नदी का अच्छा है भाई का बल भला है, और दूध गाय का अच्छा होता है। ये चारो बाते अच्छी ही होती है।

ग्वाला उत्तर देता है

आख रो तो तप भलो कराख रो तो जल भलो
वाहु रो तो वल भलो मा रो तो दूध भलो
चारो बातो भले भाई, चारो बातो भले भाई

तप तो आख का यानी अनुभव का काम आता है। पानी कराख यानी कधे पर लटकती सुराही का बल अपनी भुजा का ही काम आता है और दूध तो मा का ही अच्छा है भाई।

आधुनिक कृषि पडित बताएगे कि वर्षा के लिहाज से पूरा मरुस्थल गेहू बोने लायक नही है। यह तो खडीन बनाने वालो का चमत्कार था कि यहा सैकड़ो वर्षो से गेहू सैकड़ो मन कटता रहा। पालीवाल ब्राह्मणो ने जैसलमेर राज को अनाज और भूसे से लबे समय तक सम्पन्न रखा था।

दईबध यानी देवीबध की जानकारी हमे श्री जेठूसिह और श्री भगवानदास माहेश्वरी से मिली है। उस क्षेत्र मे प्रकृति ने देवी ने जितने भी ऐसे स्थल बनाए होगे उनमे से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसे समाज अपनी आख के तप से देख न पाया हो। ये अमरपटो यहा चारो तरफ बिखरे है। पढ़ लिख गया समाज इन्हे पढ़ न पाए यह बात अलग है।

भूण थारा बारे मास

इद्र की एक घड़ी को अपने लिए बारह मास मे बदलने वाले समाज की पहली झलक हमे बीकानेर के भीनासर गाव मे गोचर भूमि मे बने रामसागर नामक साठी कुए से मिली। यहा हम श्री शुभू पटवा के सौजन्य से पहुचे थे।

भूण और इद्र का सबध हमे श्री जेठूसिह ने समझाया। न दिखने वाले पाताल पानी को देखने वाले सीरवी और फिर इतने गहरे कुए खोदने वाले कीणियो की जानकारी श्री दीनदयाल ओझा से मिली। फाक खुदाई का रहस्य समझाया श्री किशन वर्मा ने। उन्ही से बारीक चिनाई की भी जानकारी मिली।

टोडा रायसिह की बावड़ी
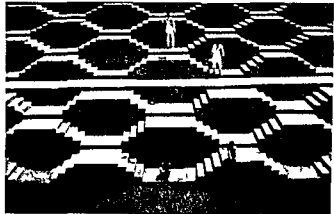
बावड़िया पगबाव और झालरा पर इस अध्याय मे अलग से कुछ नही दिया जा सका है। लेकिन कुओ की तरह इनकी भी एक भव्य परपरा रही है। यो तो बावड़ी दिल्ली के कनाट प्लेस तक म मिल जाएगी लेकिन देश के नक्शे पर इनकी एक खास पट्टी रही है। इस पट्टी पर गुजरात मध्यप्रदेश और राजस्थान आते है।

राजस्थान के इस वैभव का पहला दर्शन हमे चाकसू के श्री शरद जोशी ने कराया था। उन्ही के साथ हम टोक जिले की बावड़ी टोडा रायसिह को

देख सके थे। उस बावड़ी की सीढ़िया पर खड़े होकर हम जान सके कि आख फटी रह जाने का अर्थ क्या है। इस पुस्तक का मुखपृष्ठ इसी बावड़ी के चित्र से बनाया है। इसे गाधी शाति केन्द्र हैदराबाद और गाधी शाति प्रतिष्ठान ने एक पोस्टर की तरह भी छापा है। श्री शरद जोशी ने राजस्थान के अनेक शहरो मे बनी और अब प्राय सब जगह उजड़ रही बावड़ियो की जानकारी भी उपलब्ध करवाई। राष्ट्रदूत साप्ताहिक के १८ जून १९८९ के अक मे श्री अशोक आत्रेय ने राजस्थान की बावड़िया की लबी सूची दी है। राष्ट्रदूत साप्ताहिक का पता है सुधर्मा एम आई रोड जयपुर।

पिंजरो
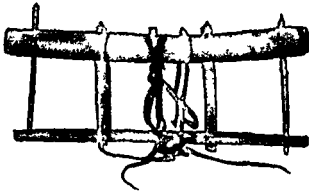
चड़स लाव और बरत से सबधित अधिकाश सूचनाए हमे श्री दीनदयाल ओझा से मिली हैं। बारियो को समाज से मिलने वाले सम्मान की जानकारी श्री नारायणसिह परिहार ने दी है। उनका पता है पो भीनासर बीकानेर। सूडिया की जानकारी हमे जैसलमेर के बड़ा बाग मे काम कर रहे श्री मघाराम से मिली है।

सारण पर चड़स खीचने वाले बैल या ऊटो की थकान का भी ध्यान रखा जाता था। भूण के साथ एक ओर छोटी घिर्री जोड़ी जाती थी जिस पर एक लबा डोरा बधा रहता था। बैलो की हर बारी के साथ यह डोरा लिपटता जाता था। पूरा डोरा लपट जाने से बैल जोड़ी को बदल देने की सूचना मिल जाती थी। पशुओ तक की थकान की इतनी चिंता रखने वाली यह पद्धति अब शायद चलन से उठ गई है। फिर भी पुराने शब्दकोशो म यह डोरा नाम से मिलती है।

फलोदी शहर के सेठ श्री सागीदास के कुए की पहली जानकारी हम जयपुर के श्री रमेश थानवी ने दी थी। फिर इनकी बारीकिया म उतारा श्री मुरारी लाल थानवी ने। उनके पिता श्री शिवरतन थानवी ने सेठ सागीदास परिवार के पुराने किस्से बताए। थानवी परिवार का पता है मोची गली फलोदी जिला जोधपुर। उत्कृष्ट गजधरा ने जिस कुए को बरसा पहले पत्थरा पर उतारा था, उसे कागज पर उतारने म अच्छे-अच्छे वास्तुकारो को आज भी पसीना आ जाता है। कुए का प्रारभिक नक्शा बनाने म हम दिल्ली के वास्तुकार श्री अनुकूल मिश्र से सहायता मिली है। बीकानेर के भव्य चौतीना की जानकारी हम श्री शुभू पटवा और श्री ओम थानवी से मिली है। शहर म इस दर्जे के और भी कुए हैं। ये सभी पिछले २०० २५० बरस से मीठा पानी द रहे हैं। प्राय सब इतने बड़े हैं कि उनके नाम पर ही पूरा मोहल्ला जाना जाता है।

मरुभूमि मे कुओ से सिंचित क्षेत्र भी काफी रहे हैं। १७वीं सदी के इतिहासकार नैणसी मुहणोत ने अपनी ख्यात मे जगह-जगह कुओ की स्थिति पर प्रकाश डाला है। गाव की रेख यानी सीमा मे पानी की स्थिति खेती सिचाई के साधन कुओ तालाबा की गिनती और पानी कहा कितना गहरा था, इसकी भी जानकारी मिलती है। परगना री विगत नामक उनके ग्रथ मे सन् १६५८ से १६६२ तक जोधपुर राज्य के विभिन्न परगनो की सूचनाए हैं। इस विषय पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय मे इतिहास विभाग के प्राध्यापक श्री भवर भादानी ने काफी काम किया

है। कुछ अन्य जानकारी श्री मनोहरसिह राणावत की पुस्तक इतिहासकार मुहणोत नैणसी और उनके इतिहास ग्रथ प्रकाशक राजस्थान साहित्य मदिर, सोजती दरवाजा जोधपुर से भी मिल सकती है।

कुओ की जगत पर अक्सर काठ का बना एक पात्र रखा रहता है। इसका नाम ही है काठड़ी। काठड़ी बनवा कर कुए पर रखना बड़े पुण्य का काम माना जाता है और काठड़ी को चुराना तोड़ना फोड़ना बहुत बड़ा पाप। पाप-पुण्य की यह अलिखित परिभाषा समाज के मन मे लिखी मिलती है। परिवार मे कोई अच्छा प्रसग मागलिक अवसर आने पर गृहस्थ काठड़ी बनवा कर कुए पर रख आते हैं। फिर यह वहा वर्षो तक रखी रहती है। काठ का पात्र कभी असावधानी से कुए मे गिर जाए तो डूबता नही फिर से निकाल कर इसे काम मे लिया जा सकता है। काठ के पात्र म जात पात की छुआछूत भी तैर जाती है।

शहरो मे कूलरो पर रखे जजीर से बधे दो पैसे के प्लास्टिक के गिलासो से इसकी तुलना तो करे।

अपने तन, मन, धन के साधन

राजस्थान मे विशेषकर मरुभूमि मे समाज ने पानी के इस काम को गर्व से एक चुनौति की तरह नही सचमुच विनम्रता के साथ एक कर्तव्य की तरह ही उठाया था। इसका साकार रूप हमे कुई कुए टाके कुडी तालाब आदि मे मिलता है। पर इस काम का एक निराकार रूप भी रहा है। यह निराकार रूप ईट पत्थर वाला नही है। वह है स्नेह और प्रेम का पानी की मितव्ययिता का। यह निराकार रूप समाज के मन के आगौर मे बनाया गया। जहा मन तैयार हो गया वहा फिर समाज का तन और धन भी जुटता रहा। उसके लिए फिर विशेष प्रयास नही करने पड़े– वह अनायास होता रहा। हमे राजस्थान के पानी के काम को समझने मे इसके साकार रूप के उपासको से भी मदद मिली और इसके निराकार रूप के उपासको से भी।

बोत्सवाना इथोपिया, तजानिया केन्या मलावी आदि देशो मे आज पीने का पानी जुटाने के लिए जो प्रयत्न हो रहे है उनकी जानकारी हमे मलावी देश के जोम्बा शहर मे सन् १९८० मे हुए एक सम्मेलन की रिपोर्ट से मिली है। रिपोर्ट कुछ पुरानी जरूर पड़ गई है पर आज वहा स्थिति उससे बेहतर हो गई हो– ऐसा नही लगता। प्रगति हुई भी होगी तो उसी गलत दिशा मे। उस सम्मेलन का आयोजन मलावी सरकार ने कैनेडा की दो सस्थाओ के साथ मिलकर किया था। ये सस्थाए है इटरनेशनल डेवलपमेट रिसर्च सेटर और कैनेडियन इटरनेशनल डेवलपमेट एजेसी।

कोई सौ देशो मे फैले मरुप्रदेशो मे पानी की स्थिति सुधारने के प्रयासो की कुछ झलक हमे अमेरिका के वाशिगटन शहर मे स्थित नेशनल एकेडमी ऑफ साईसेस की ओर से सन् १९७४ मे छपी पुस्तक मोर वाटर फॉर एरिड लेड्स प्रामिसिग टेक्नालॉजीस एड रिसर्च अपर्चुनिटीस से मिली है। इनमे नेगेव मरुप्रदेश (अब इजरायल मे है) मे वर्षा जल के सग्रह के हजार दो हजार बरस पुराने भव्य तरीको का उल्लेख जरूर मिलता है पर आज उनकी स्थिति क्या है इसकी ठीक जानकारी नही मिल पाती। आज तो वहा कप्यूटर से खेती और टपक सिचाई का इतना हल्ला है कि हमारे देश के, राजस्थान गुजरात तक के नेता सामाजिक कार्यकर्त्ता उससे कुछ सीखने और उसे अपने यहा ले आने के लिए इजरायल दौड़े जा रहे हैं।

ऐसी पुस्तको मे प्लास्टिक की चादरो से आगौर बनाकर वर्षा जल रोकने की पद्धतियो का बहुत उत्साह से विवरण मिलता है। कही मिट्टी पर मोम फैलाने जैसे तरीको को प्लास्टिक से सस्ता और

वेहतर' भी वताया जाता है ।

उम्दा तरीके उन क्षेत्रो मे है ही नही ऐसा कहते हुए डर ही लगता है । एक तरीका जरूर मिलता है। वह है खड़े के वजाए आड़े कुए । ये ईरान ईराक आदि क्षेत्रो मे बनते रहे हैं। इन्हे क्वटा कहा जाता है। इसमे एक पहाड़ी की तिरछी भूजल पट्टी के पानी को आड़ी खुदाई कर एकत्र किया जाता है ।

राजस्थान मे यह सब काम अपनी साधना और अपने साधनो से हुआ है और समाज को इसका फल भी मिला है ।

सीमट के वदले यहा सारा काम गारे चूने से किया जाता रहा है। दोना की तुलना करके देख

गारे चूने के काम को तराई नही चाहिए । सीमेट मे तराई चाहिए लगाने के वारह घटे के वाद कम से कम चार दिन तक । सात दिन तक चले तो और अच्छा । तराई न मिले यानी पानी से इसे तर न रखा जाए तो सीमेट की चिनाई फटने लगती है उसमे दरारे पड़ जाती है ।

वैसे तो चूना और सीमेट एक ही पत्थर से वनते है पर इनको वनाने का तरीका इनका स्वभाव भी वदल देता है। सीमेट वनाने के लिए मशीनो से उस पत्थर की वेहद वारीक पिसाई की जाती है और उसमे एक विशेष रेतीली मिट्टी भी मिला दी जाती है। लेकिन गारा चूना बनाने के लिए इस चूना पत्थर को पहले ही पीसने के वदले उसे भट्टियो मे वुझाया जाता है। फिर गरट या घट्टी मे रेत और वजरी के साथ मिलाकर पीसा जाता है ।

इस एक ही तरह के पत्थर के साथ होने वाले अलग-अलग व्यवहार उसके स्वभाव को भी बदल देते है ।

सीमेट पानी के साथ मिलते ही सख्त होने लगती है । इसे अग्रेजी मे सैटिग टाईम कहा जाता है। यह आधे घटे से एक घटे के बीच माना जाता है। यह प्रक्रिया दो से तीन वर्ष तक की अवधि तक चलती रहती है। उसके वाद सीमट की ताकत उतार पर आने लगती है। सख्त होने जमने के साथ साथ सीमट सिकुड़ने भी लगती है। किताव इस दौर को तीस दिन का वताती हैं लेकिन व्यवहार म लाने वाले इसे तीन दिन का मानत ह । अपने ठीक रूप म सिकुड़कर, सख्त होकर फिर सीमट किताव के हिसाव से ४० वरस तक और व्यवहार के हिसाव से ज्यादा से ज्यादा १०० वरस तक टिकती है ।

लेकिन चूने के स्वभाव म वहुत धीरज है। पानी से मिलकर वह सीमट की तरह जमने नही लगता। गरट मे ही वह एक-दो दिन पड़ा रहता है। जमने सख्त होने की प्रारभिक क्रिया दो दिन से दस दिन तक चलती है। इस दौरान उसमे दरार नही पड़ती क्योंकि यह जमते समय सिकुड़ता नही, वल्कि फैलता जाता है। इसीलिए सीमट की तरह इसे जमते समय तर नही रखना पड़ता है । इस दौरान यह फैलता है इसीलिए इसम दीमक भी नही जा पाती। समय के साथ यह ठोस होता जाता है और इसमे चमक भी आने लगती है। ठीक रख रखाव हो तो इसके जमने की अवधि दो चार वरस नही २०० से ६०० वरस तक होती है। तव तक सीमट की पाच-सात पीढ़िया ढह चुकती हैं ।

एक और फर्क है दोनो मे। चूने का काम पानी के रिसने की गुजाइश नही छोड़ता और सीमट पानी को रोक नही पाती– हर शहर मे बने अच्छे से अच्छे घरा इमारतो की दीवारे टकिया इस बात को जोर से बताती मिल जाएगी ।

इसीलिए चूने से बनी टकियो मे पानी रिसता नही है। ऐसे टाके कुड तालाब दो सौ तीन सौ बरस तक शान से सिर उठाए मिल जाएगे ।

समाज और राष्ट्र के निर्माण मे गारे चूने की उस काम के बारीक शास्त्र को जानने वाले चुनगरो की अपने तन मन और धन के साधन साध सकने वालो की आज भी जगह है ।

जलदीप
मूलसागर
जैसलमेर

शब्दसूची

अ

आ

इ

ई

उ

ख

ग

घ

च

छ

ज

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

थ

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

ल

श

स